विषय-सूची

विषय	पृष्ठ सं०

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

शहीद स्वामी श्रद्धानन्द महाराज के शव का जलूस

वर्ष ३, अङ्क ९,१०]   फाल्गुण, चैत्र   [पूर्ण संख्या ३३, ३४

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल—समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५ ।

तव वन्दन हे नाथ ! करें हम ।

तव चरणन की छाया पाकर,
शीतल सुख उपभोग करें हम ॥

भारत-जननी की सेवा का,
व्रत भारी व्रत नाथ धरें हम ॥

माता का दुःख हरने के हित,
न्योछावर निज प्राण करें हम ॥

पाप-शैल को तोड़ गिरावें,
वेदाज्ञा इक सीस धरें हम ॥

फूले गुरुकुल की फुलवारी,
विद्या-मधु का पान करें हम ॥

राग द्वेष को दूर भगाकर,
प्रेम-मन्त्र का जाप करें हम ॥

सायं प्रातः तुझ को ध्यावें,
दुःख-सागर के पार तरें हम ॥

कुल-पिता श्रद्धानन्द का दीक्षान्तसंस्कार में स्नातकों को उपदेश।

पुत्रो ! आज मैं तुम्हें उन बन्धनों से मुक्त करता हूं, जिन के अनुसार गुरुकुल में चलना तुम्हारे लिए आवश्यक था । पर यह न समझना कि अब तुम्हारे लिए कोई बन्धन नहीं है । प्राचीन काल से हमारे ऋषियों ने कुछ बन्धन बांध रक्खे हैं, उन्हें मैं आज तुम्हें सुनाना चाहता हूं । इन बन्धनों के पालन करने में किसी का तुम पर दबाव नहीं, इसी लिए ये बन्धन और भी कड़े हैं । ये बन्धन उन उपनिषद् वाक्यों में वर्णित हैं, जिन्हें आज से हज़ारों वर्ष पहले इस पवित्र भूमि में प्रत्येक आचार्य अपने स्नातकों को विद्या-समाप्ति के समय सुनाया करता था । उन्हीं पुराने आचार्यों का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें वे वाक्य सुनाता हूं ।

पुत्रो ! परमात्मा सत्यस्वरूप है । उस के प्यारे बनने के लिए अपने जीवन को सत्यस्वरूप बनाओ । तुम्हारे मन में, तुम्हारी वाणी में, और तुम्हारी क्रिया में सत्य हो ।

धर्म-मर्यादा का उल्लंघन मत करो । इस मर्यादा का साक्षि अन्तःकरण ही है, बाहर मे कोई धर्म बतलाने वाला नहीं है। जो हृदय परमात्मा का आसन है, वही तुम्हें धर्म की मर्यादा बतलादेगा । अपने आत्मा की वाणी को सुनो और उसके अनुसार चलो ।

स्वाध्याय से कभी मुख न मोड़ो । वह तुम्हें प्रमाद से बचायेगा ।

जिस आचार्य ने तुम्हारी इतने दिनों तक रक्षा की, उसके प्रति तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे अपने हृदय से पूछो । यह कुल तुम्हारा आचार्य है । मैं नहीं जानता कि तुम इसे क्या दक्षिणा देना चाहते हो । मैं तुम से केवल एक ही दक्षिणा मांगता हूं । मैं चाहता हूं कि तुम्हारा ऐसा कोई काम न हो, जिस से तुम्हें अपने आत्मा और परमात्मा के सामने लज्जित होना पड़े ।

तुम में से अब कई गृहस्थ में प्रवेश करेंगे । उनसे मैं कहता हूं कि पांचों यज्ञों के करने में कभी प्रमाद न करना ।

माता पिता आचार्य और अतिथि, ये तुम्हारे देवता हैं, इनकी सदा शुश्रूषा करना धर्म समझो।

पुराने ऋषि बड़े उदार और निरभिमान थे। वे कभी पूर्ण या दोषरहित होने का दावा नहीं करते थे। उन्हीं का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें कहता हूं कि हमारे अच्छे गुणों का अनुकरण करो, और दोषों को छोड़ दो। इस संसार की अँधयारी में किसी को अपना ज्योतिः-स्तम्भ बनाओ। पढ़ा पढ़ाया कुछ अंश तक पथ-दर्शक होता है, पर सच्चे पथ दर्शक वे ही महापुरुष होते हैं, जो अपना नाम संसार में छोड़ जाते हैं। वे जीवन-समुद्र में ज्योतिःस्तम्भ का काम देते हैं। ऐसे आत्मत्यागी सत्यवादी और पक्षपात रहित महापुरुषों के, चाहे वे जीवित हों या ऐतिहासिक, पीछे चलो।

लेना तो सभी संसार जानता है, तुम इस योग्य हुए हो कि अपनी बुद्धि और विद्या में से कुछ दे सको। जो तुम्हारे पास है, उसे उदारता से फैलाओ। हाथ खुला रक्खो, मुट्ठी को बन्द न होने दो। जो सरोवर भरता है वह फैलाता है, यह स्वाभाविक नियम है।

जिस भूमि की मिट्टी से तुम्हारा देह बना है, जिस की गङ्गा का तुमने निर्मल जल पीया है, और जिसके गौरव के सामने संसार का कोई देश ठहर नहीं सकता, उस पवित्र भारत-भूमि में रहते हुए तुम उसके यश को उज्ज्वल करोगे, यह मुझे पूरी आशा है। इस के साथ ही जिस सरस्वती की कोख में तुमने दूसरा जन्म लिया है, उसे मत भूलना। किसी भी काम को करते हुए सावित्री माता की उपासना से विमुख न होना।

यह मैंने संक्षेप से उन वाक्यों का सारांश सुना दिया है, जो कि सहस्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि में गूंजते रहे हैं। इन्हें गुरु-मंत्र समझो और अपना पथ-दर्शक बनाओ।

इस के अतिरिक्त मेरा भी तुम्हारे साथ कई वर्षों का संबन्ध रहा है। मैं तुम से गुरुदक्षिणा नहीं मांगता। गुरुदक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है, मांगना मेरा धर्म नहीं। मैं तुम से यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारे राजनैतिक सामाजिक या मानसिक विचार क्या क्या हैं। मैं केवल तुम से यही पूछता हूं कि क्या तुहारे सब काम सत्य पर आश्रित हैं

या नहीं । स्मरण रक्खो, यह ससार सत्य पर आश्रित है । सत्य के बिना राजनीति धिक्कारने योग्य है, सत्य के बिना समाज के नियम पददलित करने योग्य हैं । यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलम्बन है, तो मुझे न कोई चिन्ता है और नाहीं कुछ मांगना है । +

कुलपिता श्रद्धानन्द का कुलजन्मोत्सव

के समय कुलपुत्रों को उपदेश

पुत्रो ! आज मुझे इतनी प्रसन्नता है कि तुम उसका अनुभव नहीं कर सकते। मुझे अपने जीवन में जिस बात के देखने की आशा नहीं थी, उसे मैंने देख लिया । यदि आज मेरे प्राण भी चलने को तय्यार हों तो मैं बड़ी खुशी से उन्हें आज्ञा देसकता हूं। इस आनन्द का कारण मैं बताना निरर्थक समझता हूं, तुममें से प्रत्येक उसे अनुभव कर रहा है । लोग समझा करते थे कि हम दिमागों को परतन्त्र बनाना चाहते हैं, परन्तु अब लोग देख रहे हैं कि यदि कोई ऐसा स्थान है जहां स्वतन्त्रता नहीं रुक सकती तो वह यही स्थान है। मेरा अपने ब्रह्मचारियों को केवल एक ही उपदेश है; मत देखो कि लोग तुम्हें क्या कहते हैं, सत्य की दृढ़ता को पकड़ो । सारे संसार का सत्य ही आधार है । यदि तुम्हारा मन वचन और कर्म सयमय है, तो समझो कि तुम्हारा उद्देश्य पूरा होगया । प्रसिद्धि के पीछे भाग कर कोई काम मत करो। प्रसिद्धि के पीछे भागने से किसी की प्रसिद्धि नहीं हुई । अपने सामने एक उद्देश्य रखलो, उसी में लग जाओ, फिर गिरावट असम्भव है । उपदेशक बनो या मत बनो, पर एक बात याद रखो, बनावटी मत बनो । सब को परमात्मा वाणी की शक्ति या उपदेश देने की शक्ति नहीं देता । वाणी न हो न सही, किन्तु आचरण सत्यमय हो। नट न बनो, न इस संसार को नाट्य-शाला बनाओ । स्वच्छ जीवन रक्खो । यदि इस प्रकार का स्नातकों का आचरण होगा तो मेरा पूरा सन्तोष है । *

+ यह उपदेश कुलपिता ने दूसरे दीक्षान्त-संस्कार में २८ मार्च १९१४ ई० को दिया था।

* यह उपदेश कुलपिता ने चतुर्थ कुलजन्मोत्सव के समय फाल्गुन बदी १०, सम्वत् १९७० को दिया था।

श्रद्धानन्द का बलिदान

काँप गयी है धरा, देख कर तेरा आज बलिदान ।
सहम गया आकाश, बढ़ा जब तेरा उसकी ओर विमान ॥

देख रही है भौचक दुनिया, आर्यवीर क्या करते हैं ।
धार्मिक युद्ध-क्षेत्र में कैसे हँसते हँसते मरते हैं ॥

जितना पीछे इन्हें धकेलो उतने आगे बढ़ते हैं ।
जितना ही पैरों से कुचलो उतने सिर पर चढ़ते हैं ॥

हुई संगठन की जय सच्ची, हुई शुद्धि की पूरी जीत ।
घर घर में क्या, हृदय हृदय में गाये जाते इनके गीत ॥

कर सकता था जीते जी जो, मर कर उससे अधिक किया ।
अमर बने रहने का सीधा पथ जो हम को दिखा दिया ॥

एक एक शोणित-कण से जनमेंगे सौ सौ श्रद्धानन्द ।
जो पल भर में आर्यजाति के काटेंगे दुखदायी फन्द ॥

कौन सदा जीवित रहने को इस दुनिया में आया है ।
धन्य वही है, आत्मत्याग से जिसने सुयश कमाया है ॥

जाओ स्वामी, पुनर्जन्म ले अबकी जब तुम आओगे ।
तब सचमुच ही काम अधूरा पूर्ण हो चुका पाओगे ॥

आँखों में ये अश्रु नहीं हैं हृदय स्वच्छ करते हैं हम ।
जान हथेली पर लेकर अब पग आगे धरते हैं हम ॥

होगा जीवन धन्य, धर्म पर जावेंगे जब अपने प्राण ।
धार्मिकता की विडम्बना से मातृभूमि पावेगी त्राण ॥

श्रीयुत बद्रीनाथ जी भट्ट

स्वामी श्रद्धानन्द

(डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर शान्तिनिकेतन)

हमारे देश में जो सत्य—व्रत के ग्रहण करने के अधिकारी हैं, एवं इस व्रत के लिये प्राण देकर जो पालन करने की शक्ति रखते हैं, उनकी संख्या बहुत ही कम होने के कारण हमारे देश की इतनी दुर्गति है। ऐसी अवस्था जहां पर है, वहां पर स्वामी श्रद्धानन्द से इतने बड़े वीर की इस प्रकार मृत्यु से कितनी हानि हुई होगी इसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इसके मध्य एक बात अवश्य है कि उनकी मृत्यु कितनी ही शोचनीय हुई हो, किन्तु इस मृत्यु ने उनके प्राण एवं उनके चरित्र को उतना ही महान् बना दिया है। बार बार इतिहास में देखा जाता है कि जिन्हों ने अपना सब कुछ देकर कल्याण-व्रत को ग्रहण किया है, अपमान और अपमृत्यु ने उनके ललाट पर जय-तिलक की तरह अपना स्थान जमाया है। महापुरुष आते हैं प्राण की मृत्यु के ऊपर जय करने के लिये, सत्य को जीवन की सामग्री बनाने के लिये। हमारे खाद्य द्रव्य में प्राण देने का जो उपकरण है, वह वायु में भी है, एवं वैज्ञानिक परीक्षागार में भी है। परन्तु जब तक वह उद्भिज प्राणी में जीव आकार नहीं धारण करता तब तक प्राण की पुष्टि नहीं होती। सत्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। केवल वाक्यों के द्वारा आकर्षण कर उसे जीवन-गत करने की शक्ति कितनों में है? सत्य को जानते बहुत हैं, किन्तु उसको मानता वही है जो विशेष शक्तिमान है। प्राणों की आहुति के द्वारा मान कर ही हम उस सत्य को सब मनुष्यों के लिये उपयोगी बना देते हैं। यह मानकर चलने की शक्ति ही एक सुन्दर वस्तु है। इस शक्ति की सम्पद् को जो समाज को अर्पित करते हैं उन्हीं के दान का महामूल्य है। सत्य के प्रति उसी निष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को देगये हैं। अपनी साधना-परिचय के उपयोगी जिस नाम को उन्होंने ग्रहण किया था वही सार्थक हुआ। सत्य की उन्होंने श्रद्धा की थी। इसी श्रद्धा के मध्य सृष्टि-शक्ति है। इसी शक्ति के द्वारा वे अपनी साधना को मूर्ति के रूप में सजीव कर गये हैं। इसी से उनकी मृत्यु भी प्रकाशमय हो उनकी श्रद्धा को उस भयहीन दोषहीन तथा क्रांतिहीन अमृतमय छवि को उज्वल कर प्रकाशित कराती है। सत्य के प्रति श्रद्धा के इस श्रद्धानन्द को उन के चरित्र के मध्य आज हम सार्थक आकार में देख रहे हैं। यह सार्थकता बाह्य

फल स्वरूप नहीं है, अपितु निज की ही अकृत्रिम वास्तविकता में है।

विधाता जब दुःख को हमारे पास भेजता है तब वह अपने साथ एक प्रश्न लेकर आता है। वह हम से पूंछता है कि तुम हम को किस भाव से ग्रहण करोगे? विपद आवेगी नहीं ऐसा नहीं हो सकता— सङ्कट का समय उपस्थित होता है, उद्धार का कोई भी उपाय नहीं रहता, किन्तु जिस प्रकार विपद् का हम व्यवहार करते हैं इसी के ऊपर प्रश्न का सदुत्तर निर्भर है। किसी पाप के उपस्थित होने पर हम उस से डरें वा उसके सम्मुख अपना सिर झुकावें? अथवा उस पाप के विरुद्ध पाप ही को सम्मुखीन करें, मृत्यु के आघात दुःख के आघात के ऊपर रिपु की उन्मत्तता को जागृत करें? शिशु के आचरण में देखा जाता है कि जब वह गिरता है तब वह उल्टे जमीन ही को मारता है। वह जितना ही मारता है, फलस्वरूप उसको उलटा ही लगाता है। परन्तु यदि किसी वयस्क को ठोकर लगता है तो वह सोचता है कि वह किस प्रकार दूर की जावे। परन्तु हम देखते हैं कि किसी समय बाहर के आकस्मिक आघात की चमक में मनुष्य भी शिशु की बुद्धि वाला हो जाता है। वह उस समय सोचता है कि धैर्य का अवलम्बन करना ही कापुरुषता है, क्रोध का प्रकाश करना ही पौरुष है। हम यह स्वीकार करते है कि आज दिन स्वभावतः ही क्रोध आवेगा, मानव धर्म तो बिल्कुल छोड़ा नहीं जा सकता। किन्तु यदि क्रोध से अभिभूत हों तो वह भी मानव-धर्म नहीं है। आग के लग जाने पर यदि सब कुछ भस्म हो जावे तो आग की रुद्रता लेकर आलोचना करना वृथा है। विपद सभी पर आती है, जिनके पास उसके प्रतिकार के उपाय नहीं हैं वे भी दोषी हैं।

भारतवर्ष के अधिवासियों के मुख्यतया दो भाग है- हिन्दू और मुसलमान। यदि हम यह समझें कि मुसलमानों को एक ताक में रख देश की सभी मङ्गल चेष्टाओं में सफल होंगे तो यह भी एक बहुत भारी भूल है। हमारे लिये सब से ज्यादा अमंगल और दुर्गति का विषय यह है कि मनुष्य मनुष्य के पास रहता है किन्तु उनके मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राज्य में राजपुरुषों के साथ हमारा एक वाह्य योग-दल है, किन्तु आन्तरिक सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राजत्व में यही हमारे लिये सब से अधिक पीड़ाजनक है।

इसी से आज हमें देखना होगा कि हमारे हिन्दू समाज में कहां कौन सा छिद्र है, कौन सा पाप है, अति निर्भय भाव से उस पर हमें आक्रमण करना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर आज हिन्दू समाज को आवाहन करना

होगा, कहना होगा हम पीड़ित हुए हैं हम लज्जित हुए हैं, बाहर के आघात से नहीं किन्तु अपने भीतर के पापों के फलस्वरूप। आओ, आज हम सब मिल कर उस पाप को दूर करें। परन्तु हमारे लिये यह बहुत सहल बात नहीं है, क्यों कि हमारे भीतर बहुत प्राचीन अभ्यस्त भेद-बुद्धि भरी हुई है। बाहर बहुत पुरानी भेद की प्राचीर है। मुसलमानो ने जिस समय किसी उद्देश्य को लेकर मुसलमान समाज को आवाहन किया है, उन्हें कोई भी बाधा नहीं पड़ी। एक ईश्वर के नाम पर 'अल्लाह हो अकबर' कह कर उन्हें बुलाया है। फिर आज हम सब बुलावेंगे हिन्दू आओ, तब कौन आवेंगे? हमारे मध्य कितने छोटे छोटे सम्प्रदाय है, कितनी प्रादेशिकता है, उनको पार कर कौन आवेगा? कितनी आफ़तें पडीं परन्तु कभी भी तो हम एकत्रित नहीं हुए। बाहर से जब पहला वार मुहम्मद गौरी का हुआ था, तब भी तो उस आसन्न विपद् के दिन हिन्दू एकत्र नहीं हुए थे। इसके बाद मन्दिर के बाद मन्दिर लुटने लगे, देव-मूर्तियें झूठी होने लगीं, तब वे अच्छी तरह लड़े हैं, मारे गये हैं, खण्ड खण्ड होकर युद्ध करके मरे हैं, किन्तु एकत्र नहीं हुए। अलग २ थे, इसी लिये मारे गये। युग युग में हमारे इसके प्रमाण हैं। हां, सिक्खों ने अवश्य एक समय इस बाधा को दूर किया था। परन्तु सिक्खों ने जिसके द्वारा इस बाधा को दूर किया वह सिक्ख धर्म था। पञ्जाब में सिक्ख धर्म के आवाहन करने पर जाट-प्रकृति सभी जातियां एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो सकीं थी। एवं, वे ही धर्म की रक्षा करने के लिये खड़ी हो सकीं थी। शिवाजी ने भी एक समय धर्मराज्य की स्थापना की नींव डाली थी। उनकी जो असाधारण शक्ति थी उसी के द्वारा वे समस्त मराठों को एकत्र कर सके थे। इसी सम्मिलित शक्ति ने भारत वर्ष को अपनाकर छोड़ा था। घोड़े के साथ जब घुड़सवार का सामञ्जस्य रहता है तभी वह घोड़ा किसी भी तरह नहीं रुकता। शिवाजी के साथ होकर जो उस दिन लड़े थे, उनके साथ भी शिवाजी का ऐसा ही सामञ्जस्य था। बाद में ऐसा सम्बन्ध नहीं रहा। पेशवाओं के मन में आचरण में भेद-बुद्धि का उदय हुआ, और इसी के फलस्वरूप उनका पतन भी हुआ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह जो हमने भेद-बुद्धि के पाप को पाल रखा है, यह अत्यन्त भयङ्कर है। पाप का प्रधान आश्रय दुर्बल के मध्य है। अत एव यदि मुसलमान हमें मारते हैं और हम यदि उसे पड़े पड़े सह रहे हैं, तो यह केवल सम्भव हुआ है हमारी दुर्बलता के कारण। हमारे लिये, एवं

स्वामी जी की चिता ज्वाला

वीर स्नातक धर्मपाल
विद्यालंकार

स्वामी भक्त सेवक
धर्मसिंह

Punjab Fine Art P ess Calcutta
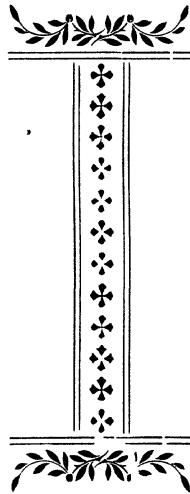
प्रतिवेशियों के लिये भी हमें अपनी दुर्बलता को दूर करना होगा । हम प्रतिवेशियों के निकट अपील करते हैं कि तुम इतने क्रूर मत बनो, अपनी उन्नति करो । नरहत्या के ऊपर किसी भी धर्म की भित्ति स्थापित नहीं की जा सकती । परन्तु यह अपील इसी दुर्बलता का रोना है । जिस प्रकार वायुमण्डल के घिर आने पर झड़ी आप ही आरम्भ हो जाती है, धर्म की दुहाई दे उसे कोई बाधा नहीं दे सकता, उसी प्रकार दुर्बलता के पाल रखने पर अत्याचार भी होने लगते हैं, उनमें कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता । कुछ समय के लिये एक उपलक्ष्य को लेकर परस्पर में कृत्रिम बन्धुता हो सकती है, किन्तु चिरकाल के लिये नहीं हो सकती ।

आज हमारे अनुताप का दिन है, आज अपराध का प्रायश्चित्त करना होगा । सत्यमय प्रायश्चित्त यदि हम करेंगे तभी शत्रु हमारा मित्र हो सकेगा, रुद्र हमारे प्रति प्रसन्न होंगे ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की यादगार में

(लेखक श्रीयुत डा० तारकानाथदास० एम०ए०, पी०एच० डी०)

एक आततायी की गोली ने ऋषि श्रद्धानन्द को हम से छीन लिया । आप का भौतिक देह हम से बिछुड़ गया परन्तु आपकी आत्मा हमारे बीच में ही है । आज श्री स्वामी जी के भौतिक वियोग पर मैं उनकी आत्मा से और भी निकट सम्बन्ध का अनुभव कर रहा हूं । मेरे लिये वह ऋषि 'दधीचि' थे जिन्होंने धर्म-वेदी पर जीवन की अन्तिम आहुति भी दे डाली । वीरता के वह साक्षात् अवतार थे । हिन्दुओं की निर्बलताओं व कुरीतियों को दूर करने में उनसा पराक्रमी कोई नज़र नहीं आता था । उनका मिशन करोड़ों पतितों और मनुष्यता के जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित हिन्दु भाइयों का उद्धार करना ही न था, अपितु उनका पवित्र मिशन उन विधर्मियों को, जो ऋषि-सन्तान होते हुए भी तलवार के बल पर मुसलमान बनाये गये, शुद्ध करके हिन्दू धर्म में फिर से दीक्षित करने का था । सारांश में उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक उत्थान के लिये जी जान से कोशिश की और अपने उद्योग में सफल हुए । भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिये जिन साधनों का उन्होंने सहारा लिया था, मैं उनकी गहराई में नहीं जाता, परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि वह हिन्दुओं के उन शहीदों में से जिन के नाम पर हिन्दू जाति गर्व करती है श्रेष्ठतम थे और भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में सब से उत्कृष्ट थे ।

हिन्दुओं के कुछ राजनीतिज्ञों को

हिम्मत नहीं हुई कि वह शुद्धि और अछूतोद्धार के पवित्र कार्य में महान् स्वामी का हाथ बटा सकें, क्यों कि वह विधर्मियों की धर्मान्धता से भय खाते थे। ऐसे राजनीतिज्ञों ने उस महान् स्वामी के महान् कार्यों का ज़ाहिरा और पोशीदा तौर पर विरोध करके भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता को भारी नुकसान पहुंचाया है, और एकता के आधारभूत सिद्धान्त धार्मिक सहिष्णुता के कायम होने में बड़ी भारी रुकावट डाली है। उम्मेद है कि ऐसे अदूरदर्शी राजनीतिज्ञ अपनी आंखें खोलेंगे और स्वामी जी के कार्यों में पूरा सहयोग देकर इस पाप का प्रायश्चित करेंगे।

उस महान् व्यक्ति की स्मृति को ताजा बनाये रखने का एक ही उपाय है, और वह यह कि उन द्वारा संचालित कार्यों को द्विगुण उत्साहसे चलाया जाये। शुद्धि और संगठन के कार्यों के अतिरिक्त २५ करोड़ हिन्दूओं को एक ही छत्रच्छाया के नीचे लाना भी उनका उद्देश्य था। इस उद्देश्य के लिये 'स्वामी श्रद्धानन्द-दिवस' मनाया जाना चाहिये और उनके कार्यों के लिये धनसंग्रह होना चाहिए। इस काम में पं० मालवीय, लाला जी, डा० मुंजे, मि० केलकर, श्रीनिवास आयंगर तथा मि० बिर्ला आदि को पूरा सहयोग देना चाहिये। प्रतिवर्ष हिन्दू जाति को स्वामी श्रद्धानन्द-दिवस मनाना चाहिए और उन के मिशन को पूरा करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी 'ब्रह्मचर्य' के प्रचारक थे। स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह के वह कट्टर पक्षपाती थे। हर एक हिन्दू का, जो स्वामी जी के भक्त होने का दावा भरता है, कर्तव्य है कि वह उक्त कार्यों का क्रियात्मक प्रचार करे। २५ करोड़ हिन्दूओं में से यदि २ लाख हिन्दू भी सच्चे हृदय और दृढ़ संकल्प के साथ स्वामी जी के कार्यों को पूरा करने का व्रत ले लें तो १० वर्षों में हिन्दू जाति की काया पलट हो जाय।

हिन्दूओं को याद रखना चाहिये कि श्री स्वामी जी को हिन्दू जाति के उत्थान के निमित्त जीवन की आहुति देनी पड़ी है। एक तरह से हिन्दू जाति की पतित अवस्था ही एक धर्मान्ध मुसलमान द्वारा स्वामी जी की हत्या का कारण है। इस लिए याद रखिये स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या की जिम्मेवारी उन सब हिन्दूओं पर है जो हिन्दू जाति की पतित अवस्था को देखते हुए भी उत्थान के लिए अपना कर्तव्य पालन नहीं करते। आइये, आज उस पाप को हम धो डालें और प्रायश्चित कर के श्री स्वामी जी द्वारा शुरु किए हुये कार्यों को द्विगुण उत्साह से करें ताकि शहीद श्रद्धानन्द का यश अमर हो और हिन्दू जाति फिर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के

श्रीचरणों में "शोकाञ्जलि"

(१)

निज मातृभू के भक्त थे तुम दीन-जन के बन्धु थे।
थे नाथ! नाथ अनाथ के श्रद्धा सुधा के सिन्धु थे॥
कुलभूमि के कुलदेव थे, देवत्व की वर पूर्ति थे।
मृत-जाति-जीवन स्फूर्ति थे, करुणा क्षमा की मूर्ति थे॥

(२)

आलोक थे इस लोक के, तुम आर्य जनता-प्रान थे।
परतन्त्र भारत के सदा ही, मूर्तिमय अभिमान थे॥
निज धर्म-धन के थे धनी, धृति सिन्धु के शुभ पोत थे।
अशरन-शरन थे पुण्य-पावन, प्रेम-गङ्गा-स्रोत थे॥

(३)

इस आर्त हिन्दू जाति के, तुम एक ही आधार थे।
रणधीर थे, नरवीर थे, वर-आत्म-बल-आगार थे॥
आपत्ति से हो भीत, देश-द्रोह तुम करते न थे।
कर्त्तव्य-पालन में कभी, हा! मृत्यु से डरते न थे॥

(४)

हे वीर! तुम तो वीर गति को पा चले इस लोक से।
क्यों रो रही है आज हिन्दू जाति फिर इस शोक से॥
बलिदान की विधि धर्म पर, इस मृत्यु ने सिखला दिया।
होते अमर मर करके कैसे, दृश्य यह दिखला दिया॥

(५)

हे देव! तुमने गोलियों को इस हृदय पर सह लिया।
हो मूक केवल ईश से मृत जाति का हित कह लिया॥
हे वीर! जाओ शान्ति से, इस लोक से जो जा रहे।
पर देखना इस पुण्य-पथ पर, वीर कितने आ रहे॥

साहित्याचार्य गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

गुरुकुल का महत्त्व

(हिज़ हाइनेस श्रीमान् राजाधिराज सर नाहरसिंह जी बहादुर के०सी०आई०ई० शाहपुरा)

शिक्षा का महत्त्व केवल विद्वत्ता में नहीं प्रत्युत सदाचार में है। एक बड़ा भारी विद्वान्, प्रत्येक दार्शनिक विषय को भली प्रकार समझाने की योग्यता रखने वाला यदि अपने आचार द्वारा प्रभाव नहीं डाल सकता तो उसकी समस्त विद्वत्ता लोगों के लिए व्यर्थ और उसके लिये भार स्वरूप है। इस के विरुद्ध एक साधारण विद्वान् जो अपने आचार द्वारा यह दिखला सकता है कि श्रेय और हेय मार्ग क्या है, संसार का बड़ा उपकार कर सकता है। अतएव शिक्षा पूर्ण तभी है जब कि विद्वत्ता के साथ २ चारित्र-संगठन का भी बल हो। वही शिक्षा-संस्था वस्तुतः लोकोपयोगी संस्था है जहां इस प्रकार का प्रबन्ध हो।

प्रसन्नता है कि गुरुकुल इस प्रकार की संस्थाओं में से एक है जहां विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करते हुये विद्या की प्राप्ति कराई जाती है। वृक्ष की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता उसके फल द्वारा निश्चय की जाती है। गुरुकुल से निकले हुये स्नातकों में से कइयों ने यह दिखला दिया है कि उन की शिक्षादात्री संस्था सचमुच देश के एक आवश्यक अङ्ग की पूर्ति कर रही है।

यह ठीक है कि बहुत से लोग इस से निराश होगये हैं, परन्तु इस का कारण है। वह यह है कि कार्य आरम्भ करते ही लोग बड़े २ फल की इच्छा करने लग जाते हैं, उन लोगों ने आशा की थी कि गुरुकुल से कणाद और गौतम निकलेंगे, परन्तु यह नहीं ध्यान दिया कि इतने दिनों की बिगड़ी हुई परिपाटी एक दम कैसे सुधर सकती है। आखिर वे बालक जो गुरुकुल में प्रविष्ट हुवे हैं, उन लोगों के ही सन्तान हैं जिन्होंने नियम पूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया है, और उन के पढ़ाने वाले किसी गुरुकुल के नहीं, प्रत्युत कालेज के निकले हुये हैं और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के वातावरण से बाहर नहीं हैं। धैर्य पूर्वक स्वामी जी के बतलाए हुये मार्ग का अनुकरण करते चले जायें, तो आशा है अवश्य सफलता प्राप्त होगी, और किसी न किसी समय वह दिन भी देखने में आजायगा जिसकी सब को प्रतीक्षा है। ईश्वर वह दिन लावे।

संस्कृत संस्कृति संस्कार और गुरुकुल

(ले० श्रीयुत राज्यरत्न आत्माराम जी बड़ौदा)

२२ कोटि हिन्दु प्रजा धर्म की उपासक है। मुट्ठीभर उसके सच्चे वीर नेता कांग्रेस आदि द्वारा उसको स्वराज्य दिलाने की चिन्ता में है। पर इस प्रजा का यथार्थ स्वरूप वह अभी नहीं समझ सके। वह सच्चे हैं, उनका अनुभव भी ठीक है। उन्हों ने आंखों से युरोप आदि में जाकर देख लिया है कि मज़हबी दीवानगी इस समय वहां नहीं, और जबतक वहाँ की प्रजा मज़हब की एकमात्र पुजारी बनी रही तब तक वह इस वैभव को प्राप्त नहीं कर सकी। महात्मा गांधी जी ने भी जब चरखे से स्वराज्य दिलाने की प्रतिज्ञा करते हुए हजारों हिन्दु युवकों को कारागार भिजवाया, तब भी वह सच्चे रहे, कारण कि वह कहते थे कि भारत के सब मनुष्य चर्खा नहीं कात सके इस लिये मैं स्वराज्य कैसे दिलाता? अङ्गरेज़ी शिक्षण जो कुछ भी फैला है, उसका कुछ भी प्रभाव कालेजों के पढ़े हुए युवक हिन्दु जाति के सुधारने मे नहीं दिखा सके। ब्रह्मसमाज का दृष्टान्त काफ़ी है। हिन्दुओंका समाज दौर्भाग्य-वश 'धर्म' शब्द के गिर्द ही चक्कर काट रहा है। महमूद गज़नवी की तलवार और वर्तमान काल की मुसलिम-गुंडेशाही ने इस के मन्दिर तोड़े, पर यह उनकी मुरम्मत करने की चिन्ता में है न कि मूर्तिपूजा छोड़ने की। एक वर्ष में एक सहस्र बालविधवाओं को मुसलमान गुंडे घरों, मेलों, तीर्थों, रेलों, यज्ञों, मन्दिरों, नदियों, तथा सड़कों पर से उड़ा ले जाते हैं। पर यह बाइस करोड हिन्दुजाति क्या बालविधवा-विवाह की घोषणा करने को तैय्यार है? गङ्गा-स्नान से मुक्ति दिलाने वाले हमारे धर्मनेता ब्राह्मण क्या ७ करोड़ दलित और दो करोड़ भीलों को कल गंगा-स्नान से शुद्ध कर सकते है। देहली के 'तेज' पत्र के कृष्णांक मे श्रीयुत रामप्रसाद जी बी. ए. भूतपूर्व संपादक 'बन्देमातरम्' ने सच लिखा है कि हिन्दुवीर राजनीति का दुरुपयोग करने के कारण हारते रहे। श्री सातवलेकर जी ने उसी पत्र में सत्य कहा है कि वैज्ञानिक शस्त्रों से शून्य होने के कारण हिन्दुवीर अनेक बार परास्त हुए। महाराजा रणजीतसिंह जी ने कबायद सिखाने के लिये फ्रैंच नायक रखा था, पर यदि वीर सिख सेनापति युरोप भेजे जाते तो कितना उत्तम होता? पर विदेश-गमन पाप है, यह हिन्दुधर्म कह रहा था। इस लिये जो महानुभाव देशभक्त हिन्दुनेता होने पर २२ कोटि हिन्दुप्रजा को धर्म की बातों से एकदम हटा कर स्वराज्य की अलफ़ बे पढाना चाहते हैं, वे सच्चे

देशभक्त हैं, इस में संदेह नहीं। ब्रहडाकृर हितैषी है, यह तो ठीक हैं, पर मरीज़ की मरज़ दूसरी है। जब तक घोड़े पर बैठ कर एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में रोटी खाने को हिन्दुप्रजा तैय्यार नहीं, जब तक वह यवन वा गोरे के पानी को रणभूमि में पीने को तैय्यार नहीं, तब तक उसको स्वराज्य का पात्र समझना ठीक नहीं हो सकता। अभी दिल्ली बहुत दूर है, यह कहावत ठीक घटती है।

अब प्रश्न केवल यह रह गया कि इन २२ कोटि हिन्दुओं का सामाजिक सुधार करने के लिये पहिले क्या किया जावे ? क्यों कि जब तक ये कल्पित धर्म के भूत से डर रहे हैं तब तक आत्म-हत्या और समाज-हत्या के कुमार्ग में विवश जा रहे हैं।

इनका सामाजिक रोग भी तो बड़ा भयंकर और असाध्य कोटि का बन रहा है। जो धर्म के रक्षक कहलाते हैं, वही इस समय दुर्दैव से हिन्दुसमाज के प्राणघातक बन रहे हैं। संस्कृत भाषा के एकमात्र वे ठेकेदार हैं। २२ कोटि हिन्दुप्रजा उनकी बात को ईश्वर-वाक्य मान रही है। वे यदि कहदें कि विधवा विवाह पाप है तो क्या मज़ाल कोई सेठ इसको कर तो जावे? इस लिये वेदों वा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में क्या लिखा है? और उसके अर्थ व्याकरण अनुसार क्या है? ये बातें जब तक घर घर में न पहुंचाई जावें तब तक २२ कोटि प्रजा नहीं मान सकती कि सत्य धर्म क्या है? कानपुर से 'धर्म' नामी एक मासिकपत्र ६ वर्ष से निकलता है। वह एक सौ पण्डितों वा शास्त्रियों की नामावलि छाप कर भोले हिन्दुओं को कहता रहता है कि एक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने यदि भूल की तो क्या हुआ, सैंकड़ों पंडित विधवा-विवाह के विरोधी हैं। इस का यथार्थ उत्तर गुरुकुल के हो जाने पर हम छाती ठोक दे सकते हैं कि यदि आप १०० संस्कृतज्ञ पंडितों के नाम विरोध में दे सकते हो तो हम गुरुकुल से निकले हुए स्नातकों के नाम, जो भारी पंडित है, उन से दुगुने वा तिगुने दे सकते हैं। विदेश-गमन पाप है, शुद्धि पाप हैं. दलितोद्धार पाप है, रण में जाना पाप है, ये सब पाप शीघ्र ही पुण्य हो जावें यदि शीघ्र ही हम गुरुकुलों की संख्या बढ़ा सकें।

संस्कृत-भाषा, संस्कृत-विद्या, वैदिक-संस्कृति और संस्कार, सब लुप्त हो चुके थे। काशी में ब्राह्मण के पुत्र को ही केवल संस्कृत और शास्त्र पढ़ाते थे। क्षत्रियों और वैश्यों के बालक कभी नहीं पढ़ पाते थे। आज गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का भारी प्रताप है कि यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र वा दलित बालक संस्कृत तथा वेद पढ़ना चाहे, उसके लिए कोई रुकावट

वा बंधन नहीं। इस समय उक्त गुरुकुल में चारों वर्णों के ही बालक जहां वेद पढ़ रहे है वहां यज्ञ भी करते हैं। यही नहीं परन्तु एक पंक्ति में भोजन भी करतेहैं। यह वह उत्तम काम है जिस की स्तुति हो नहीं सकती। संगठन का यही महाप्राण है।

सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों, महती आर्ष संस्कृति, मनुष्य को देवता वीर तथा तपस्वी बनाने वाले वैदिक षोडश-संस्कार, इनके तत्त्व को वही छात्र जान सकता है जो गुरुकुल में रह कर संस्कृत का भारी पण्डित होकर निकले। दण्ड तथा कौपीनधारी होने से प्रत्येक ब्रह्मचारी बालचर बन जाता है। आर्य-भोजन अथवा अन्नाशन की महिमा गुरुकुल खूब दिखा रहा हैं। राममूर्त्ति समान पत्थर तोड़ते हुए, और पृथिवीराज समान बाण चलाते हुए अन्नाशी ब्रह्मचारी वीरपद को सार्थक कर रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों का डंडों से शेर को मार डालना, उनके ब्रह्मचर्य्य वीरता तथा अन्नाशन का भारी प्रकाशक है। गुरुकुल कांगडी के जन्म तथा जीवन को मैं सफल समझता हूँ, क्योंकि यह छात्रों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को साथ साथ करने में रातदिन लगा हुआ है।

इस समय देशभक्त ला० हरदयाल जी संस्कृत भाषा सीखने की जरूरत आर्य्य-जाति के प्रत्येक छात्र को बता रहे है। कलकत्ते मे जो अभी भारतीय संस्कृत-प्रचारक मंडल का अधिवेशन हुआ है, उसने आर्य्य-जनता का विशेष ध्यान संस्कृत भाषा सीखने की तरफ आकृष्ट किया है। जिस संस्कृत भाषा की तरफ इस समय आर्य जनता का ध्यान खैंचा जा रहा है, उस संस्कृत-भाषा के प्रचार का भारी काम गुरुकुल कर रहा है और करता रहेगा। महर्षि दयानन्द का जीवन व्यवहाररूप से संस्कृत भाषा सीखने तथा सिखाने का सच्चा मार्ग-दर्शक है। लौकिक और वैदिक संस्कृत का भेद जना कर अंग तथा उपाङ्ग ग्रन्थों सहित वेद तथा वैदिक साहित्य को पढ़ने की ऋषि ने अनुभव-सिद्ध चेतावनी दी है। उनके इस मार्ग पर मुनवर त्यागवीर महात्मा पंडित गुरुदत्त एम० ए० ने चलकर दिखा दिया। उस मुनि ने अष्टाध्यायी महा-भाष्य निरुक्त आदि अंग और छः दर्शन वा उपाङ्ग ग्रन्थ स्वयं पढ़े और गृह पर अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा निरुक्त आदि पढ़ाने के लिए दो श्रेणियां खोलदीं। और तीन वर्ष तक वा मरण-पर्य्यन्त उनको चलाते रहे। जब साधु केशवानन्द ने सनातन धर्म सभा लाहौर की तरफ से धारा-प्रवाह संस्कृत में भाषण दिए तो उस समय दो घंटे तक धारा प्रवाह शुद्ध संस्कृत बोल कर

वैदिक सिद्धान्तों का मंडन करते हुए पंडित गुरुदत्त ने सिद्ध कर दिया कि ऋषि दयानन्द प्रदर्शित सनातन आर्षविधि अङ्ग उपाङ्ग सहित वेद पढ़ने की सफल हो गई। पं० गुरुदत्त के इस सिद्ध प्रयोग ने गुरुकुल कांगड़ी को स्थापन करने की व्यवहार रूप से प्रेरणा की।

ज्यों २ गुरुकुल से स्नातक वा वैदिक पंडित अधिक से अधिक संख्या में निकलेंगे, त्यों २ ही वेद-मंत्रों के सच्चे अर्थ जिन्हें आज तक पौराणिक छिपा रहे थे सब पर खुल जावेंगे और विधवा विवाह तथा नियोग को रोकने की शक्ति फिर किसी में न होगी। विदेश-यात्रा, शुद्धि, दलितोद्धार, स्त्री-शिक्षण, सहभोज, तथा संस्कार आदि सामाजिक विषय, जो इस समय गोरखधंधे के रूप में दृष्टि पड़ते हैं, सरल हो जावेंगे। यूनिवर्सिटी ने परीक्षा को रोग बना कर उस की चिन्ता से जो सैंकड़ों युवकों के मन मार दिये हैं, उसका भी संशोधन गुरुकुल की न्याय तथा प्रेम युक्त परीक्षा-प्रणाली कर रही है। मुसलमानों ने जो भ्रम फैला रखा है कि मांस खाने से ही बल आता है, इसका उत्तर गुरुकुलों ने उत्तम रूप से दे रखा है। पत्थर उठाने तीर चलाने तथा लाठी आदि की खेलें करते हुए अनाशी ब्रह्मचारियों ने कांगड़ी के जंगल में कुछ वर्ष हुए एक शेर को डंडों से मार कर दिखा दिया कि मांस खाए बिना भी सब वीर हो सकते हैं।

योरुप के शिक्षण-शास्त्री कहते हैं कि आदर्श-छात्र वह हो सकता है जो शरीर से पुष्ट, विद्या से विभूषित और चारित्रवान् हो, तथा समाज-सेवक बन सके। यह आदर्श गुरुकुल विशेष उत्तमता तथा सुविधा से पूर्ण कर रहा है, क्यों कि इसको यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं के लिए घोटा लगवाने की जरूरत नहीं।

देश सेवा के जो अन्य भारी तत्व हैं, उनकी तरफ भी गुरुकुल कांगड़ी का पूरा ध्यान सदैव रहता है। यथा, यहां शिक्षण का माध्यम हिन्दी भाषा है। इस के अतिरिक्त यहां सब वर्णों के बालक, ब्राह्मण से लेकर शूद्रकुलोत्पन्न तक न केवल संग ही रहते हैं किन्तु एक ही पंक्ति में खाना खाते हैं। अछूत बालक भी बराबर इस में लिये जाते और समान अधिकार पाते हैं। इस लिए उक्त सब कारणों से मैं इस गुरुकुल का जन्म तथा जीवन सफल समझता हूं। जब तक नगर नगर में ऐसे २ उत्तम गुरुकुल नहीं होंगे तब तक आर्यजाति की संतान की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति एक साथ नहीं हो सकेगी।

गुरुकुल कांगड़ी भूमि के प्रदाता दानवीर मुन्शी अमन सिंह जी

गुरुकुल कांगड़ी के उपाध्यायगण

श्री पूज्य स्वामी जी के चरणों में

श्रद्धाञ्जलि

ऐ पूज्य मेरे स्वामी, क्या भेंट मैं चढ़ाऊं ।
भगवन्! तुम्हीं बतादो, कैसे तुम्हें रिझाऊं ॥
उपकार जो किये थे, मुझ से गिने न जाते ।
ऋण से दबा हूँ उन के, कैसे उऋण कहाऊं ॥
जो कुछ भी मैं बना हूं, सब आप की कृपा थी ।
बदला मैं उस दया का, कैसे कहो चुकाऊं ॥
मङ्गल भरा तुम्हारा, नित हाथ शीश रहता ।
आशीष थी तुम्हारी, अब कैसे उस को पाऊं ॥
दलितों के तुम सहारे, तुम ने पतित उभारे ।
उस कार्य को तुम्हारे, पा शक्ति मैं बढ़ाऊं ॥
त्यागी परोपकारी, तुम दिव्य-देहधारी ।
मन में सदा तुम्हारी, प्रतिमा गुरो! बिठाऊं ॥
वो दिव्य बल तुम्हारा, दिल साफ जोश वाला ।
पाऊं कि जिस से मैं भी, औरों के काम आऊं ॥
दुःख को मिटा चुके हो, अमरत्व पा चुके हो ।
क्यों देव सद्गति की, फिर प्रार्थना कराऊं ॥
श्रद्धा का दिव्य मन्दिर, यह मेरा दिल विमल हो ।
चल के तुम्हारे पथ में, जीवन सफल बनाऊं ॥
बस कामना यही अब, सेवा में सब लगाऊं ।
फिर अन्त में तुम्हारी, सी वीर मृत्यु पाऊं ॥

आ० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

ब्रह्मचर्य

(ले० प्रो० धर्मदत्त जी विद्यालंकार, उपाध्याय आयुर्वेद महाविद्यालय)

विषय-वासना के संयम करने का नाम ब्रह्मचर्य्य है। विषय का संस्कार बीजरूप से प्रत्येक बालक के मन में विद्यमान रहता है। उसके युवावस्था में आने पर कुछ २ अंकुरित होने लगता है और पूर्ण युवा हो जाने पर अधिक विकसित हो जाता है। इस प्रकार विषय-वासना प्रत्येक मनुष्य के अन्दर स्वभावतः ही उत्पन्न होती है। पर इस के आधीन हो जाना ब्रह्मचर्य का नाश और इसे अपने आधीन रखना ही ब्रह्मचर्य्य है।

जब बालक के शरीर में शुक्र उत्पन्न होने लगता है तब उस का स्वभाव भी बदलने लगता है। पहले वह माता पिता की आँख के नीचे रहना पसन्द करता था, अब स्वतन्त्र और उच्छृङ्खल रहना पसन्द करता है। अब उसे किसी को आधीनता और और किसी का आश्रय अखरता है; जिन माता पिता के बिना वह थोड़ी देर में व्याकुल हो जाता था वे ही यदि उसे आधीनता की बेड़ियों में रखना चाहें तो उन के विरुद्ध द्रोह करने लगता है। स्कूलों के मास्टर बालक के इस स्वभाव-परिवर्त्तन को न समझ कर उन्हें बलात्कार जकड़ कर रखना चाहते हैं, जिस से बालक उनके विरुद्ध विद्रोह कर देते हैं और उन के तथा विद्यार्थियों के बीच झगड़े उत्पन्न हो जाते हैं। अध्यापकों को जानना चाहिये कि यह स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति युवावस्था प्रारम्भ होने का एक ज़रूरी परिणाम है। गुरुओं को चाहिये कि वे इस आयु में बालक की नियन्त्रण-रज्जू को न तो बहुत ढीला करें और न ही बहुत खींच कर रखें, क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में बालक के बिगड़ने का डर है।

बालक के अन्दर अब साहस भी आने लगता है। जो पहले रात को बाहर नहीं निकल सकता था, वह अन्धेरे में निकल कर बड़े २ उपद्रव करने लगता है; प्रायः कर बालक शैतानी के कामों में इस साहस को प्रकट करते हैं, यह साहस भी युवावस्था का एक परिणाम है।

परन्तु एक विशेष परिवर्तन और भी होता है। जो बालक अब तक विषय की बात नहीं जानता था वह अब विषय की बातों में दिलचस्पी लेने लगता है। जननेन्द्रिय के लिए एक प्रकार की उत्सुकता अनुभव करने लगता है और सुन्दर बालकों तथा सुन्दर कन्याओं की ओर आकर्षण भी अनुभव करने लगता है।

बारहवें वर्ष से सोलहवें वर्ष के बीच किसी समयमें यह विषय सम्बन्धी

विचार प्रत्येक बालक में उत्पन्न होने आरम्भ होते हैं। इन विचारों के झोंके उसे डगमगाने लगते हैं। परन्तु यदि माता पिता और आचार्य्य की तीव्र आँखे बालक पर हर समय लगी रहैं और यदि इन के अमृतमय उपदेश उसे प्राप्त होते रहें तो बालक इन झोंकों द्वारा गिरने से बच जाता है। पर यदि दौर्भाग्य से माता पिता अपने काम धन्धों में लगे रह कर और आचार्य्य दूसरे प्रबन्ध के काम में लगे रह कर ऐसे संकटमय काल में बालक को अकेला छोड़ दें तो वह इन झोंकों से डगमगाया हुआ ऐसे अन्धेरे कुएं में जा गिरता है जिस में से फिर उसे उबारना कष्ट-साध्य हो जाता है। अभिप्राय यह है कि बारहवें से सोलहवें वर्ष के बीच जब कि अण्ड-ग्रन्थियां शुक्र को बनाना आरम्भ करने लगती हैं, और युवावस्था आरम्भ होने लगती है तब बालक पुरुष बनना आरम्भ होता है। इस अवस्था में स्वाभाविक तौर से उस के अन्दर कुछ विषय सम्बन्धी विचार उत्पन्न होने लगते हैं।

शुक्रोत्पत्ति का प्रयोजन

युवावस्था में—यह ठीक है कि शुक्रोत्पति के साथ विषय सम्बन्धी विचार भी आरम्भ होते लगते हैं, परन्तु शुक्रोत्पत्ति का एक मात्र प्रयोजन बालक की मानसिक तथा शारीरिक अभिवृद्धि करने का होता है। यदि इस आयु में शुक्र उत्पन्न न हो तो बालक सदा के लिए बालक ही रह जाय और पुरुष न बन सके।

शुक्र उत्पन्न हो कर फिर से शरीर में विलीन हो जाता और शरीर की मांसपेशियों नसों और अस्थियों के निर्म्माण में सहायक होता है, अतः इसे "जीवनीय रस" कहते हैं। यदि यह जीवनीय रस शरीर में उत्पन्न न हो तो कितना ही पौष्टिक भोजन खाया जावे तब भी शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि न हो। परीक्षण से देखा गया है कि यदि किसी प्राणी के युवाकाल के आरम्भ में ही उसकी अण्ड-ग्रन्थियां निकाल दी जावें तो उसके शरीर और मन की वृद्धि सर्वथा रुक जाती है और वह बालक के समान ही रह जाता है। पर यदि फिर उसकी किसी जगह की त्वचा को काट कर त्वचा के नीचे किसी दूसरे प्राणी की अण्ड-ग्रन्थियाँ स्थापित कर दी जावें और ऊपर से त्वचा सी दी जावे तो उस की रुकी हुई शारीरिक और मानसिक वृद्धि फिर से आरम्भ हो जाती है, जिस से पता लगता है कि अण्ड-ग्रन्थियों का रस या शुक्र शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि का अत्यावश्यक कारण है।

शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि बारहवें से बीसवें वर्ष तक विशेष तौर से होती है। बीसवें वर्ष के पीछे

अभिवृद्धि की मात्रा कुछ मन्द हो जाती है, किन्तु चौबीसवें या पच्चीसवें वर्ष तक जारी रहती है। अतः २४या २५ वर्ष की आयु तक शुक्र का एक मात्र प्रयोजन शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि करना ही है। इस अभिवृद्धि-काल में विषय सम्बन्धी विचार और चेष्टाएं उत्पन्न होने लगती हैं। परन्तु जो युवक उनको अपना परम शत्रु समझ कर उनको दबाये रखता है वह जहां अपने शरीर और मस्तिष्क की उन्नति में रुकावट नहीं आने देता वहां अपनी इच्छा-शक्ति को भी प्रबल बनाता और इस प्रकार अपने आप को पूर्ण मनुष्य बनाता है।

परन्तु जो युवक पच्चीस वर्ष की उमर से पहिले इस अभिवृद्धि-काल में विषय सम्बन्धी विचारों और चेष्टाओं में अपने जीवनीय रस को व्यय करना आरम्भ कर देता है, वह याद रखे कि वह अपने शरीर और मस्तिष्क के खर्च पर यह काम कर रहा है। यदि कोई युवक विषय सम्बन्धी विचारों और चेष्टाओं में आनन्द अनुभव करता है, वह अपना ही खून चूस कर समझता है कि मैंने अपना पेट भर लिया, अपने ही घर की अमूल्य सामग्री को जला कर समझता है मैंने तमाशा देख लिया।

अण्डग्रन्थियों को शरीर में से निकालने अथवा उन के रस को शरीर में से निकालने का परिणाम एक ही होता है। जिस प्रकार अण्डग्रन्थियों को निकालने से बालक मनुष्य नहीं बन सकता, उसी प्रकार चौबीस वर्ष से पहिले अण्डग्रन्थियों के रस के व्यय कर देने से भी बालक मनुष्य नहीं बन सकता, जो पुरुष शुक्र के बिन्दु २ को शरीर में लीन होने देता है वही सच्चा पुरुष बन सकता है।

युवावस्था के बाद—चौबीस या पच्चीसवें वर्ष के बाद शुक्र के दो कार्य हो जाते हैं:—

(१) शरीर का रक्षण (२) प्रजनन

इन में से रक्षण का कार्य मुख्य, और प्रजनन का कार्य गौण होता है। यह ठीक है कि यदि विषय सम्बन्धी चेष्टाओं में शुक्र का व्यय किया जाय तो शरीर को इतनी क्षति नहीं होती जितनी युवावस्था में, पर तो भी यदि अधिक व्यय किया जावे तो शरीर के रक्षण में न्यूनता अवश्य आ जाती है।

देखा गया है कि यदि पच्चीसवें वर्ष के बाद भी अण्डग्रन्थियों को निकाल दिया जाय तो पुरुष में पुरुषत्व के गुण नष्ट हो जाते हैं; वह भीरु और कमज़ोर हो जाता है, उस के अन्दर से उत्साह, साहस, वीरता, आत्माभिमान आदि पुरुषोचित गुण नष्ट हो जाते हैं; वह दूसरे के आक्रमण से अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता और उसके अन्दर से विषय सम्बन्धी आनन्द तथा प्रजननशक्ति भी नष्ट हो जाती है, जिस से मालूम होता है कि शुक्र का

मुख्य प्रयोजन. पुरुष के पुरुषत्व को कायम रखना है, अर्थात् पच्चीस वर्ष तक पुरुषत्व बनाना और पच्चीस के पीछे पुरुषत्व को कायम रखना शुक्र का मुख्य काम है । इस से जहां मनुष्य दूसरे पुरुषों के आक्रमण को रोक सकता है वहां उसी पुरुषत्व से नाना प्रकार की व्याधियों के आक्रमण को भी रोकने में समर्थ होता है । इसी लिये जब ऋतु-परिवर्तन होता है और रोगों का अधिक भय रहता है अथवा चारों तरफ कोई संक्रामक रोग फैला होता है तो जो पुरुष यत्न से वीर्य की रक्षा करते हैं वे रोग के आक्रमण से बच जाते हैं जब कि दूसरे लोग शीघ्र ही रोग का शिकार हो जाते हैं; इस से स्पष्ट है कि युवावस्था के पीछे भी शुक्र का मुख्य प्रयोजन आत्मसंरक्षण है और प्रजनन गौण है ।

शरीररूपी दीपक में शुक्र एक तैल है। यदि उसे उलट कर फैंक न दिया जावे तो वह शरीर में जला करता है। उसकी आग में सब रोगों के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, उस की ज्योति आंख और चेहरे पर दिखने लगती है, उस के तेज से चेहरा धधकता करता है, उसके ज्वलन से शरीर मे दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है, जीवन में उत्साह और उमङ्ग की विद्युत् संचार किये रहती है, और यदि कोई आकस्मिक कारण न हो जावे तो जीवन रूपी दीप १०० वर्ष तक अखण्ड रूप से चमकता दमकता रहता है ।

शुक्र की उत्पत्ति के साथ विषय वासना की उत्पत्ति और स्थिति उस का लक्षण मात्र है, उद्देश्य नहीं । विषय वासना के होते हुए उसे आठों याम काबू रखना घर के सिंह को वश में रखने के सदृश है और यही सच्चा ब्रह्मचर्य है ।

माता पिता का कर्तव्य

कई बार माता दाई या दूसरे लोग बच्चे की उपस्थेन्द्रिय को हिला २ कर खुश हुआ करते हैं, परन्तु यह सर्वथा अनुचित है । जब बालक तीन या चार वर्ष का हो जावे तो उसे दाई या नौकरों के पास सर्वथा नहीं छोड़ना चाहिये; अनेक बालकों के चरित्रनाश का बीज इन्हीं नौकरों ने बोया है । जब बच्चा तीन वर्ष से बडा हो जावे तो उसे कभी किसी दूसरे के पास न सुलावें। अनेक मूर्ख माता पिता तो आठ या दस वर्ष के बालकों को भी एक ही चारपाई पर सुला देते हैं, इस से उनके चरित्र के नष्ट होने का भारी भय रहता है। जब बालक पांच वर्ष से बड़ा हो जावे तो उसे उठाना, प्यार करना और चूमना सर्वथा छोड़ देना चाहिये, नह बातों से उस में सोई हुई विषयवासना के उत्तेजित होने का भय रहता है ।

आठ वर्ष तक माता बालक की प्रत्येक क्रिया को अपने सामने रखे,

और आठ वर्ष की उमर के पीछे आने वाले भय को सम्मुख रखती हुई माता अपने बालक को सावधान करती हुई प्यार से समझावे कि "ए मेरे प्यारे बेटे! तेरी यह उपस्थेन्द्रिय बड़ी पवित्र इन्द्रिय है, यदि इस हाथ से स्पर्श किया जावे या कोई दूसरा इसे हाथ से स्पर्श करे तो यह अपवित्र हो जाती है, जो बच्चे इसे छूते या दूसरों को छूने देते हैं वे बच्चे ही रह जाते हैं, मनुष्य नहीं बन सकते, अतः यदि तू मनुष्य बनना चाहता है तो मेरी शपथ खाकर कर कहो कि न तो कभी इस इन्द्रिय को छुवेगा और न किसी को छूने देगा।" बालक की श्रद्धा माता पर अगाध होने से माता की बात को मान लेगा। इस प्रकार की शिक्षा को आचार्यकुल में गुरुवर्ग भी समय २ पर देते रहें।

सात या आठ साल की उमर के पीछे बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कर दें। गुरुकुलों की श्रेणियों के अध्यापकों या शिक्षकों को भी यह समझना चाहिये कि पुस्तक पढ़ाने की अपेक्षा बालक के चरित्र पर ध्यान देना उन के लिए अधिक आवश्यक है। वे याद रखें कि यदि उनके आधीन एक भी बालक में दुर्व्यसन आ जावेगा तो वे परमात्मा और दुनियाँ, दोनों के सामने इस लापरवाही के ज़िम्मेदार होंगे।

प्रायः आठ या दस वर्ष के बालकों को यह शंका उत्पन्न होती है कि "हम कहां से, कैसे उत्पन्न हुए?" माता पिता यदि उन के इस प्रश्न को टाल देंगे तो बालकों की इस प्रश्न सम्बन्धी उत्सुकता और भी अधिक बढ़ जावेगी, अतः 'उत्पत्ति' का अपने बालकों को ठीक २ ज्ञान करा देना चाहिये। उन को वनस्पतियों के फूल दिखा कर बताना चाहिये कि फल कैसे उत्पन्न होते हैं? पशुओं और पक्षियों का उत्पत्ति का भी इशारा कर देना चाहिये, क्योंकि यदि बालक अपने आप इन बातों को उत्सुकता में पड़ा रहेगा तो इस से अधिक हानि है।

यदि माता पिता तथा आचार्य चौबीस घंटे जागृत रह कर बालक के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करेंगे तो निश्चय है कि बालक के मन-मन्दिर में सोया पड़ा विषयवासनारूपी सिंह शीघ्र जागृत न होगा। परन्तु इस आयु के बाद युवावस्था के आरम्भ होते ही यह मन से उत्पन्न होने वाला 'मनसिज सिंह' स्वयमेव कुछ २ जागृत होने लगता है। तेरह से बीस वर्ष तक की आयु न केवल बालक प्रत्युत उनके माता पिता और आचार्य, सब के लिये परीक्षा का काल है। यदि वे इस काल में से बालक को ऐसी सावधानी से ले आवेंगे कि जिस से उस में जागता हुआ यह सिंह उत्तेजित होने न पावे तो वे महाधन्य होंगे, परमात्मा के दरबार में आशीर्वाद के भागी होंगे। परन्तु यदि वे इस काल में बालकों के

प्रति लापरवाह रहेंगे तो वे याद रखें कि परमात्मा के दरबार में क्रोध और धिक्कार के पात्र होंगे।

यदि बालक किसी दूसरे लड़के से अधिक मिले या यारी दिखावे तो सावधान हो जाना चाहिये, इस उमर के लड़कों में यारी सदा चरित्र को भ्रष्ट करने के लिये होती है। माता पिता को घर में खेलने और मनोरञ्जन करने के लिये इतना सामान घर में रखना चाहिये कि बालक को इसके लिये बाहर न जाना पड़े। सायंकाल के समय माता पिता को कहीं बाहर न जाना चाहिए, घर पर रह कर बच्चों के मनोरञ्जन और खेल में उन्हें भी शामिल होना चाहिए। बालकों को खिलाने के साथ साथ मनोरञ्जन वार्तालाप से उनका ज्ञान भी अच्छा बनाया जा सकता है। यदि बालकों का पर्याप्त मनोरञ्जन हो जावे तो वे कभी दूसरे लड़कों के साथ खेलने बाहर न जावेंगे।

२० वर्ष की आयु तक लड़के को कभी नाटक, सिनेमा, नाच आदि देखने न भेजना चाहिये; गन्दा उपन्यास, अश्लील साहित्य और गन्दे चित्र तथा गन्दी गल्पें हाथ में न देनी चाहियें, क्योंकि ये विषयवासना सम्बन्धी विचारों को भड़काने वाले हैं।

यदि माता पिता और आचार्य के दिन रात सावधान रहने पर भी युवक में यह विषयवासना रूपी सिंह उत्तेजित हो जावे और वह किसी प्रकार का दुष्कृत्य कर बैठे तो उसको मारना या धमकाना नहीं चाहिये, इस से कुछ भी लाभ न होगा। उस को तो इस सिंह के विरुद्ध लड़ने और काबू करने के लिए उत्साहित करना चाहिये, पिता या गुरु उसको एकान्त में बुला कर इस विषय में उत्तम २ उपदेश दे कर समझाने की पूर्ण चेष्टा करें। प्रेम से समझाने पर युवक अपनी कठिनता को आप ही कह देता है, तब पिता या आचार्य इस शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए जिस प्रकार से भी बन सके उसकी सहायता करे।

युवकों का कर्तव्य

जो हस्तमैथुन के द्वारा शुक्र का नाश करते हैं, उनके शरीर और मस्तिष्क को बड़ा धक्का लगता है। उन के शरीर की वृद्धि रुक जाती है जिससे उनका चेहरा पीला, शरीर कृश, और शरीर के कृश हो जाने से पाचन आदि के अंग भी निर्बल हो जाते हैं, पाचन आदि के क्षीण होने से स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती और बालक पढ़ाई में निर्बल हो जाते हैं। उत्साह, साहस, तेज और ओज की मात्रा घट जाती और वह डरपोक हो जाता है, आंखों से आँख मिला कर नहीं देख सकता। उसका सारा आत्मविश्वास नष्ट होजाता है और इसलिए वह उद्योगहीन, परिश्रमहीन हो कर आलसी हो जाता है।

जननेन्द्रिय का दुरुपयोग करने से युवकों में स्वप्नमेह का रोग उत्पन्न हो जाता है जिस से निद्रावस्था में कोई विषय सम्बन्धी स्वप्न आता है, शिश्नहर्ष होता है,और शुक्रनाश हो जाता है। इस से शरीर और मस्तिष्क और भी अधिक निर्बल होने लगते हैं। कई युवक तो अधिक हस्तमैथुन करने से गृहस्थ में प्रवेश करने से पहिले ही अपने आप को नपुंसक बना लेते हैं; इस प्रकार यह स्मरण रखना चाहिये कि यह आदत मनुष्य के जीवन को सदा के लिए दुःखी बना देती है।

माता।पिता और आचार्य को चाहिये कि ऐसे बालक को प्रेम से समझावें न कि डरावें और दण्ड दें; क्योंकि प्रायः युवक को यह पता नहीं होता कि इस आदत से उसके शरीर और मन को क्या हानि होती है। यदि इस से होने वाली हानियों को उसके सामने रखा जावे तो वह अवश्य ही इस आदत को छोड़ देता है।

यदि युवक यह समझता हो कि हस्तमैथुन आदि द्वारा शुक्रनाश करने में कोई आनन्द है तो उसे स्मरण रखना चाहिये कि यह आनन्द वही है जो कुत्ते को सूखी हड्डी चबाते समय हड्डी के द्वारा मुख में से निकले खून चूसने में आता है। उसे यह भी याद रखना चाहिये कि वह इस झूठे आनन्द से भविष्य में आने वाले आनन्द को खो रहा है। इस क्रिया को अपने शरीर और मस्तिष्क के लिए घातक समझ कर इस से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये, यदि मुक्त होने का दृढ़ निश्चय कर लेगा तो वह अवश्य ही मुक्त होगा। उसे अपने दिल में जमा लेना चाहिये कि यदि वह पच्चीस वर्ष से पहिले इन बातों से शुक्र का नाश करेगा तो पच्चीस वर्ष के बाद गृहस्थ के योग्य न होगा।

सब से प्रथम उसे व्यसनी युवकों के साथ मिलना छोड़ देना चाहिये और उन्हें अपना परम शत्रु समझना चाहिये। दृढ़ निश्चय कर लेने से भी यदि श्रवण, स्पर्शन, दर्शन आदि से कामविषयक विचार उत्पन्न होने लगें तो उसी समय शत्रु को समीप आया जान बैठा हो तो उठ खड़ा हो जाय, खड़ा हो तो दौड़ना आरम्भ कर दे; ऐसे समय में लेटे रहना या बैठे रहना उचित नहीं है; अथवा खुली हवा में आकर दो एक प्राणायाम कर लेने चाहियें। हर समय कार्य में लगे हुए युवक को विषय सम्बन्धी विचार अधिक नहीं तङ्ग करते, अतः अपना खाली समय खेतो,फुलवारी,चित्रकारी या दस्तकारी में लगाये रखना चाहिये।

युवक को दूसरों से अलग एकान्त में भी नहीं रहना चाहिये। हंसी, खेल, सभा, सोसायटी और समाज आदि में सभ्य पुरुषों के साथ अच्छी तरह मिलना जुलना चाहिये। जो एकान्त में रहते हैं वे प्रायः इस दुर्व्यसन का

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा वर्तमान मुख्याधिष्ठाता और आचार्य जी

शिकार हो जाते हैं। यदि युवक से कभी विषय सम्बन्धी चेष्टा हो जावे तो पश्चात्ताप करना चाहिये; एक समय या एक दिन भोजन का परित्याग कर देना चाहिये; ऐसा करने से दूसरी बार फिर प्रलोभन आने पर वह अपने को अधिक बलवान पाता है।

वीर्य-रक्षा के कुछ साधन

(१) भोजन सम्बन्धी— मद्य, मांस, तैल, खटाई, लाल मिर्च, गर्म मसाले, चाय, काफी, तमाखू तथा सब तले हुए गरिष्ठ भोजन, ये गर्म उत्तेजक और जननेन्द्रिय को भड़काने वाले भोजन हैं। इनका भोजन सभी को कम करना चाहिये और युवकों को तो सर्वथा न करना चाहिए। यदि भोजन अधिक मात्रा में खाया जावे तो भी रक्त का दबाव बढ़ जाता है, इस लिए वीर्य की रक्षा करना कठिन हो जाता है, अतः भोजन सदा थोड़ी मात्रा में करना चाहिये, रात्रि को तो विशेषतः इस का ध्यान रखना चाहिये।

(२) व्यायाम सम्बन्धी— निर्बल युवक और पुरुषों के लिए वीर्यरक्षा करना अपेक्षया कठिन होता है, क्योंकि शरीर की निर्बलता के साथ उत्पादक अंग भी निर्बल होते हैं और शरीर के बलवान होने के साथ उत्पादक अङ्ग भी बलवान होते हैं। उत्पादक अङ्गों की निर्बलता को हटाने के लिए सीधे खड़े होकर या पेट या पीठ के भार लेट कर टांगों को आगे या पीछे या पार्श्वों की ओर धीरे २ उठाने वाली व्यायाम करनी चाहिये। ज्यों २ जंघायें बलवान होती हैं त्यों २ उत्पादक अङ्ग भी बलवान होते हैं, अतः दौड़ना भी बड़ा लाभदायक है। इस के अतिरिक्त पीठ या रीढ़ की हड्डी की भी व्यायाम से वातनाड़ियां बलिष्ठ होती हैं, इस से उत्पादक अङ्गों की वातनाड़ियां बलिष्ठ होती हैं। ऐसे व्यायाम और आसन जिन में पीठ को आगे या पीछे की तरफ झुकाया जाता है प्रतिदिन कुछ काल करनी चाहिये। शीर्षासन से भी वीर्य-रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। यदि सायंकाल या सोने से ५ या १० मिनट पूर्व शीर्षासन किया जाये तो रात्रि को स्वप्नमेह या शिश्नहर्ष का भय नहीं रहता, क्योंकि इस से शुक्राशय और अन्य उत्पादक अङ्गों में रक्त का संचय कम हो जाता है।

(३) प्राणायाम सम्बन्धी— सिद्धासन में अर्थात् बांयें पैर की एड़ी को गुदा और उपस्थेन्द्रिय के मध्य-स्थान पर और दाहिने पैर की एड़ी को उपस्थेन्द्रिय पर ऐसा रखकर बैठे कि बांयें पैर की एड़ी से सीवन प्रदेश अच्छी तरह दबा रहे; इस स्थान के दबने से भी वीर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। इसी प्रकार सीधा बैठकर एक नासिका से गहरा श्वास लेकर कुछ क्षण अन्दर रोक कर दूसरी नाक से कुछ धीरे २

बाहिर फैंके। अन्दर लेते समय पेट और छाती को फूलने दे, और श्वास फैंकते समय पेट और छाती को अन्दर सिकुड़ने दे। परन्तु सारे समय में उपस्थेन्द्रिय और गुदा को ऊपर खींच रखे।

(४) स्नान सम्बन्धी—एक टब में ताजा कूप का जल भर कर ऐसे बैठे कि टांगें तथा धड़ पानी से बाहिर रहें और जंघा से नाभि तक का प्रदेश पानी में डूबा रहे। फिर एक तौलिये से पेडू तथा शिश्न और गुदा के मध्यवर्ती प्रदेश को अच्छी तरह मलें, इस प्रकार पांच या दश मिनिट स्नान करना पर्याप्त है। इस से उत्पादक अंगों में नवीन बल प्राप्त होता है। शिश्न के अग्र चर्म के नीचे वर्तमान मल को भी साफ़ करते रहना चाहिये, क्योंकि उसके संचित होने से शिश्न के क्षोभ का भय रहता है।

(५) निद्रा सम्बन्धी—सोने से न्यून से न्यून दो घण्टा पहिले तक भोजन दूध या पानी आदि द्रव न पीने चाहियें, क्योंकि भरे हुए पेट और भरे हुए मूत्राशय का दबाव शुक्राशय पर पड़ सकता है जिस से स्वप्नमेह का भय रहता है। यदि तीव्र स्वप्नमेह की शिकायत हो तो रात्रि का भोजन कुछ दिन के लिए बन्द कर देना चाहिये। सोने से पहिले पेशाब होकर हाथ मुंह धोकर थोड़ी देर शान्ति से बिस्तर पर बैठना चाहिये; सारी चिन्ताओं को मन से हटा कर चित्त को खूब प्रसन्न करना चाहिये और अपने शरीर के सब अंगों पर हाथ फेरते हुए और विशेषतः निर्बल अंगों पर हाथ फ़ेरते हुए कल्पना करनी चाहिये कि ये सब अंग बलवान हो रहे हैं। कुछ काल के लिए चिन्ताओं से रहित आनन्द-मग्न हो अपनी रुचि के अनुसार भगवच्चिन्तन करना चाहिये और इसी निश्चिन्तता की स्थिति में लेटते ही सो जाना चाहिये। जिस प्रकार की अवस्था सोने से ठीक पहिले रहती है वैसी ही प्रायः सारी रात रहती है, अतः निश्चिन्त हो कर सोने वाले को अच्छी नींद आती है। स्वप्नमेह की चिन्ता सर्वथा न करनी चाहिये, जो जितनी अधिक चिन्ता करता है, यह भूत उसे उतना ही अधिक लिपटता है। सदा करवट पर ही सोना चाहिये, पीठ पर सोने से मूत्राशय और मलाशय के बीच में वर्तमान शुक्राशय पर दबाव पड़ता है जिससे कि स्वप्नमेह का भय रहता है।

रात्रि को एक या दो बजे के लग भग प्रायः प्रत्येक आदमी की निद्रा खुलती है, उस समय उठ कर एक वार अवश्य पेशाब कर लेना चाहिये; अधिक स्वप्नमेह की शिकायत हो तो जितनी वार नींद खुले उठ कर पेशाब कर लेना चाहिये। जिस समय शिश्न-हर्ष का पता लगे उस समय लेटे न रह कर उठ कर बैठ जाना या कुछ कदम चल लेना चाहिये।

(६) आचार-विचार सम्बन्धी—जिस प्रकार यदि आरम्भ में आँख को धूंयें और धूल आदि से न बचाया जावे या उस से अधिक उपयोग या कुरुपयोग लिया जावे तो आंख कमज़ोर पड़ जाती है और फिर थोड़े से धूंयें के लगने से लाल होकर पानी बहाने लगती है, फिर यदि कुछ काल आँख को पूरा आराम दिया जावे और उससे किसी प्रकार का उपयोग न लिया जावे तो आंख अपनी साधारण अवस्था में आ जाती है, इसी प्रकार यदि युवक अपनी उपस्थेन्द्रिय को दर्शन, स्पर्शन, श्रवण अथवा हस्त-मैथुन आदि से और गृहस्थ अतिस्त्रीसंग से क्षुब्ध करता रहे तो जनन सम्बन्धी अङ्ग इतने निर्बल हो जाते हैं कि थोड़े से भी क्षोभक कारण से क्षुब्ध हो जाते हैं, इसलिए पहिले तो ऐसे आचार विचार से बचना चाहिये जो जननेन्द्रिय को क्षुब्ध करने वाले हैं। यह समझ लेना चाहिये कि ये सब उत्तेजनाएं उत्पादक अंगों को अधिक २ निर्बल और असहन शील कर जाती हैं। गृहस्थियों और युवकों में उत्पादक अंगों को अधिक उत्तेजित करने से ही शीघ्रस्खलन और पुंस्त्व-नाश के रोग हो जाते हैं, अतः जनन सम्बन्धो अंगों को बलवान करने और इन्हें सब उत्तेजनाओं से बचाने के लिए पूर्ण विश्राम देना चाहिये। ब्रह्मचर्य से ही वास्तव में भोग की शक्ति और भोग का आनन्द प्राप्त होता है।

(७) औषधि सम्बन्धी—दिन में तीन या चार माषे आमलकी या हरीतकी का चूर्ण मधु के साथ खा लेने से वीर्य रक्षा में सहायता मिलती है। बबूल की भुनो हुई गोंद को वेसन के लड्डू आदि में डाल कर खा लेना इसके लिए हितकर है। अच्छा बना हुआ चन्द्नासव एक या दो तोला थोड़े जल में मिला कर दिन में एक दो वार पी सकते हैं; ये सब उत्पादक अंगों के लिए शामक औषधियें हैं।

बंग, अभ्रक, प्रवालमुक्ता और शुक्ति आदि की भस्में तथा इन के बने हुए प्रयोग भी वीर्य रक्षा में बड़े सहायक होते हैं। ये उत्पादक अंगों के लिए उत्तम बल्य द्रव्य हैं। उत्पादक अङ्गों को उत्तेजित करने वाली दवाइयां न खानी चाहियें क्यों वे थोड़ी देर के लिए उत्तेजित कर के उन्हें चिरकाल के लिए निर्बल कर जाती हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ अथर्व वेद

ब्रह्मचर्य-तप से ब्रह्मचारी मृत्यु या पाप का हनन करते हैं, और एवं जीवात्मा ब्रह्मचर्य के द्वारा इन्द्रियों से सुखानन्द को पाता है॥

मन्त्र-साधन

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

१

कैसा आया समय, बदला काल का रङ्ग कैसा
होती जाती भरतभुवि की आज कैसी दशा है।
आँखें खोलें विबुध, समझें देश की सर्व बातें
सोचें होके प्रयत, युग के धर्म का मर्म क्या है ॥

२

आशा होवे उदय उर में, दूर होवे निराशा
सूझें सारे सुपथ, सफला युक्तियां हों हमारी।
ऐसे बाँधें नियम, जिससे कालिमा दूर होवे
आभा वाले सकल दृग हों, ज्योति फैले जनों में ॥

३

प्यारी संख्या प्रति दिवस है जाति की न्यून होती
संतप्ता हो दुख-उदधि में मग्न जातीयता है।
छीने जाते हृदय-धन हैं, पत्नियां छूटती हैं
सोने जैसा सुख-सदन है प्रायशः दग्ध होता ॥

४

ढाहे जाते सुर-सदन हैं, मूर्त्तियाँ टूटती हैं
बाधा होती अधिकतर है पर्व औ' उत्सवों में।
काँटे जाते प्रथित पथ में चाव से हैं बिछाये
प्यारी शोभा रहित, नित है नन्दनोद्यान होता ॥

५

की जाती हैं विफल, छल से सिन्धुजा की कलायें
टूटी सी है परममधुरा भारती की सुवीणा।
क्रीड़ा द्वारा कलुषित बनी मञ्जु मन्दाकिनी है
लूटा जाता धनद-धन है, स्वर्ग है ध्वंस होता ॥

६

तो भी होता कलह नित है, वैर है वृद्धि पाता
सद्भावों के सुमन-चय में हैं घुसे दम्भ-कीट ।
सच्चिन्ता की ललित-लतिका हो गई छिन्नमूला
उल्लासों के विपुल विटपी पुष्प ही हैं न लाते ॥

७

धर्मों की है निपतित ध्वजा, सत्यता वञ्चिता है
हैं शास्त्रों की सबल विधियाँ रूढ़ियों से विपन्ना ।
सत्कर्मों की प्रगति बदली लोक आडम्बरों से
मोहों द्वारा बहुमथित हो आर्यता मूर्च्छिता है ॥

८

वेदों की है अतुल महिमा, मन्त्र हैं सिद्धि-मन्त्र
धाता जैसी सृजन-पटु हैं उक्तियाँ आगमों की ।
भू-विख्याता, पतितजनता-पावनी जान्हवी है
आर्यों के हैं सुअन, हम में कौनसी न्यूनता है ॥

९

सच्ची शिक्षा सतत चित की उच्चता है सिखाती
सद्वाञ्छा है विदित करती त्याग संकीर्णता दो ।
उद्बोधों के विपुल मुख से है यही नाद होता
जागो जागो, कटि कस उठो, काल की क्रान्ति देखो ॥

१०

जो लोहू है गरम, यदि है गात में शेष शक्ति
जो थोड़ी भी हृदय-तल में धर्म की वेदना है ।
हो जाता है चित व्यथित जो जाति-उत्पीडनों से
तो हो जाओ सजग, सम्हलो, सिद्धि का मन्त्र साधो ॥

साहित्यरत्न श्री अयोध्या सिंह जी उपाध्याय

सहजात-प्रवृत्तियें और उन का शिक्षा में स्थान

(ले०--श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार)

पशुओं और मनुष्य में बड़ा भेद यह समझा जाता है कि जहां पशुओं के सारे व्यवहार और उनकी सारी चेष्टायें सहजात-प्रवृत्तियों के आधीन होती हैं वहां मनुष्य अपने सारे कार्य बुद्धि से सिद्ध करता है। सहजात-प्रवृत्ति (Instinct) प्राणी के अन्दर कार्य करने की वह शक्ति है, जिस की सहायता से प्राणी फल या उद्देश्य का पहिले से ज्ञान न रहने और उद्देश्य प्राप्ति में उपरोक्त शारीरिक या मानसिक चेष्टाओं की पहले से शिक्षा न होने न पर भी अभीष्ट फल या उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। पशुजगत् अपने अधिकांश व्यवहारों को सहजात प्रवृत्तियों की सहायता से ही पूरा करता है। बिल्ली चूहे को देखते ही उस पर झपटती है; कुत्ते के सामने आते ही भाग खड़ी होती है या भागने का मौका न रहने पर लड़ने को तैयार हो जाती है है; पानी और आग से बहुत बचती है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बिल्ली की ये क्रियायें इस लिये नहीं होती कि उसे मौत, जीवन या आत्मरक्षा का कोई विचार ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; नहीं, इस प्रकार का कोई विचार बिल्ली के मन में नहीं होता। चूहे के सामने आने पर बिल्ली उस पर झपटने और कुत्ते के आने पर भागने के लिए स्वभाव से बाधित है। यह बात दूसरी है कि इस बाधित होने का प्रयोजन आत्म-रक्षा हो। बिल्ली के मन में आत्म-रक्षा जैसा कोई विचार उपस्थित नहीं होता। बिल्ली तो चूहे के आगे आने पर इस प्रकार क्रिया कर बैठती है, जिस प्रकार किसी चीज़ के पास आ जाने से आँख झपक जाती है। किसी बड़ी शक्ति के मन में बिल्ली की आत्म-रक्षा का विचार हो तो हो। बिल्ली के शरीर की रचना और उसकी नस नाड़ियों की बनावट ही इस प्रकार की है कि वह चूहे का चित्र आंखों के आगे आते ही झपट पड़े।

मुर्गी अण्डे पर उन्हें सेने लग जाती है। अण्डों से बच्चे निकल आने पर चुग्गा ला ला कर उनकी चञ्चु में डालने लग जाती है। मुर्गी की इन क्रियाओं का प्रयोजन बच्चों की उत्पत्ति और उन की रक्षा है। पर फिर भी मुर्गी को पहले से इस प्रयोजन का ज्ञान नहीं होता और नाही उसे उन तरीकों की पहिले से शिक्षा होती है, जिनका अवलम्बन करके अण्डे सेने पर उन में से बच्चे निकल आयें। अण्डे देने के दिन आने पर चिड़िया को घोंसला बनाने

की शिक्षा कौन देता है ? कोई नहीं, केवल सहजात-प्रवृत्ति (Instinct) से वह घोंसला बनाने लग जाती है। बिल्ली, मुर्गी और चिड़िया ही नहीं सारा पशु-पक्षी जगत् ही अपने व्यवहारों के लिए सहजात-प्रवृत्तिों पर निर्भर करता है।

इस बात से प्रायः सभी विचारक सहमत हैं कि पशु-पक्षियों का जीवन सहजात-प्रवृत्तियों पर ही अवलम्बित है। पर मनुष्यों के सम्बन्ध में इस से विपरीत विचार पाये जाते हैं। समझा जाता है कि मनुष्य सर्वथा बुद्धि-जीवी प्राणी है। उस में सहजात प्रवृत्तियों का बिल्कुल अभाव माना जाता है। पर ज़रा गहरा विचार करने पर इस विचार की अवास्तविकता स्पष्ट दीखने लग जाती है। मनुष्य भी उसी प्रकार सहजात-प्रवृत्तियों पर आश्रित है जिस प्रकार पशु और पक्षी। नवजात बालक माता के स्तनों का स्पर्श पाते ही उन्हें मुख में क्यों ले लेता और दूध चूसने के लिए मुख और हाथों से उन्हें क्यों दबाने लग जाता है? भूख मिटाने की इस विधि की शिक्षा उसने कहां पायी है ? छोटा बच्चा चमकीली वस्तुओं की ओर आकृष्ट क्यों होता है ? चमकीली वस्तुओं का आकर्षण बच्चों में इतना बलवान् होता है कि अनेक वार बच्चे साँपों को पकड़ने की चेष्टा करते पाये गये हैं। अगर उक्त अवसरों पर दूसरे लोग न पहुंच गये होते तो साँप उन नन्हें बच्चों को डस लेते। बच्चों का चमकीली वस्तुओं की ओर आकर्षण क्या सहजात-प्रवृत्ति वश नहीं होता ? नवजात और छोटे २ बच्चों में ही सहज-प्रवृत्तियें नहीं पाई जातीं, प्रस्तुत युवा और वृद्धों में भी इनका पूरा राज्य होता है। युवक युवती की ओर क्यों आकृष्ट होता है और उसे सारा संसार अपनी प्रेम-पात्री के रंग में रंगा हुआ क्यों नज़र आता है ? सहजात-प्रवृत्ति से ही इस घटना की की व्याख्या हो सकती है। मनुष्यों में भी पशु-पक्षियों की तरह ही सहजात-प्रवृतियों का राज्य होने पर भी उन में कुछ ऐसी शक्तियें हैं जो उन के जीवन को पशु-पक्षियों के जीवन से भिन्न बना देती हैं। मनुष्य की स्मृति शक्ति, उस को विचार करने और परिणाम निकालने की शक्ति उस के जीवन को अन्य प्राणियों के जीवन से भिन्न बना देती हैं। पशु-पक्षी किसी पदार्थ के सामने आने पर पुनः पुनः एक ही प्रकार की क्रिया करेंगे। पर मनुष्य की स्मृति आदि शक्तियें उस के और पशु-पक्षियों के जीवन में बड़ा भेद डाल देती हैं।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि पशु पक्षियों और मनुष्यों का जीवन समान रूप से सहजात-प्रवृत्तियों (Instinct) पर आश्रित है। अब देखना

यह है कि इन सहजात प्रवृत्तियों का मनुष्य की शिक्षा में क्या मूल्य है। इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व हमें सहजात-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में दो नियमों को संक्षेप से समझ लेना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों का कथन है। कि (१) सहजात-प्रवृत्तियें अभ्यास से दब जाती हैं, और (२) ये चिरस्थाई नहीं होती। (१) पहले नियम का अभिप्राय यह है कि प्रायः ऐसा होता है कि जब किसी श्रेणी विशेष के पदार्थों के सामने आने पर प्राणी में कोई सहजात-प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती हो तो जो पदार्थ उस प्रवृत्ति (Instinct) के उद्बोधन में प्रथम आता है उसी के सामने आने पर वह प्रवृत्ति बार २ उठती है, उस श्रेणी के दूसरे पदार्थों के सामने आने पर वह प्रवृत्ति नहीं उठती। युवक के मन में युवतियों को देख कर प्रेम उत्पन्न होता है। पर जो युवती उस के अन्दर प्रेम की प्रवृत्ति (Instinct) को जगाने में प्रथम कारण होगी, युवक उसी से प्रेम करने लग जायेगा। मित्रता आदि की प्रवृत्ति (Instinct) में भी यही नियम काम करता है। इसी नियम की दूसरी व्याख्या यह है कि अनेक पदार्थों को देख कर प्राणी के अन्दर दो विरोधी सहजात-प्रवृत्तियें (Instincts) उत्पन्न होती हैं। ऐसे पदार्थ को देखने पर जो प्रवृत्ति पहले उत्पन्न हो जायेगी भविष्य में वही प्रवृत्ति पुनः पुनः उत्पन्न होगी, दूसरी नहीं। छोटे बच्चे के अन्दर कुत्ते या और प्राणियों को देखने पर उन से प्यार करने की इच्छा भी उत्पन्न होती है और साथ ही उसे इन से डर भी लगता है। अगर किसी कारण से कुत्ते के प्रथम दर्शन में बच्चे के अन्दर डरकी प्रवृत्ति (Instinct) प्रबल हो जाये तो भविष्य में सालों तक उस के मन में कुत्तों से प्यार करने की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी : इस नियम की पुष्टि में प्राणी-जगत् और मनुष्य-संसार से लाखों उदाहरण दिये जा सकते हैं। स्थानाभाव से एक दो उदाहरण ही पर्याप्त समझे गये हैं। (२) दूसरे नियम का अर्थ यह है कि अनेक सहजात-प्रवृत्तियें एक निश्चित आयु पर ही उत्पन्न नहीं होतीं। यदि उस निश्चित आयु के अन्दर २ उद्बोधक पदार्थ आकर इन प्रवृत्तियों को जगादें तो भविष्य में भी वे पदार्थ उन्हें जगाते रहेंगे, यद्यपि उन के उत्पन्न होने की आयु बीत भी चुकी हो। परीक्षणों से देखा गया है। कि अगर मुर्गी के बच्चे जन्म से लेकर आठ दस दिन तक अपनी माता की आवाज़ न सुन पायें तो फिर उनके लिए माता की आवाज़ माता की आवाज़ नहीं रहेगी। इन नियमों के अनुसार चलने से सिंह और बकरी को वास्तविक अर्थों में एक घाट पानी पिलाया जा सकता है। इन नियमों के अपवाद भी पाये जाते हैं पर उन से नियमों

गुरुकुल सूपा के प्रारम्भिक ब्रह्मचारी, कार्यकर्त्ता तथा संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ।

की पुष्टि ही होती है, खण्डन नहीं। इन नियमों को ध्यान में रखते हुए हम शिक्षा को इस प्रकार की बना सकते हैं जो कि विद्यार्थिओं के लिये अधिक से अधिक उपयोगी हो सके।

मनुष्यों की सहजात-प्रवृत्तियें भी उपर्युक्त दोनों नियमों से शासित होती हैं। बालकों को खेल-कूद, कथा कहानियों और चीजों की बाहिरी बातों में आनन्द आता है। युवकों को शारीरिक व्यायाम, काव्य, गान, मित्रता, प्रकृति, यात्रायें, साहस के कार्य विज्ञान और दर्शन अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। प्रौढ़ पुरुष के मन में महत्त्वाकांक्षा, नीति, अर्थ-संग्रह और दूसरों के प्रति उत्तर-दायित्व और स्वार्थ के भाव राज्य करने लगते हैं। अगर कोई बालक खेलने और कूदने के दिनों में क्रीड़ा की सामग्री और क्षेत्र से अलग रहे तो भविष्य में वह इन चीजों को कभी नहीं सीख सकेगा। यौवन के आरम्भिक काल को यदि संयम और सावधानी के साथ व्यतीत कर दिया जाये तो सारा भविष्य जीवन पवित्र और सदाचारी बन सकता है, दूसरी ओर उस समय की अत्यधिक स्वच्छन्दता भविष्य जीवन को नरक बना सकती है। अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों में उत्पन्न होने वाली सहजात प्रवृत्तियों का निरीक्षण करना है। जब जिस विषय क लिए शौक पैदा हो, तभी विद्यार्थी के आगे उस के सीखने के सामान उपस्थित कर देने चाहियें नहीं तो समय बीत जाने पर वह फिर कभी उस विषय को नहीं सीख सकेगा। आलेख्य, प्रकृति-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान जैसे विषयों की ओर विद्यार्थियों की रुचि एक खास समय में पैदा होती है। यन्त्र-विज्ञान, भौतिकी और रसायन का समय इसके बाद आता है। फिर मनोविज्ञान, दर्शन और धर्म के तत्त्वों की ओर रुचि हो जाती है। इस के बाद सांसरिक काम-धन्धे ही मनुष्य के लिए सब कुछ हो जाते हैं। प्रत्येक विषय के लिए रुचि कुछ समय में ही शान्त हो जाती है, उस के पश्चात् हम उसी पर निर्भर रहते हैं जो कुछ हमने उन दिनों में सीख लिया था जिन दिनों में हमारी रुचि उस विषय में उत्कट रूप में बनी हुई थी। यही कारण है कि मनुष्यों का अपने पेशों से भिन्न विषयों का ज्ञान उस से अधिक नहीं होता जितना कि उसने २५ साल से पहिले उन के सम्बन्ध में प्राप्त कर लिया था। पीछे से विषयों के सीखने के लिए आवश्यक गुण, निःस्वार्थ और उत्सुकता, जाते रहते हैं। पिछली उमर में हम पहिले तो कुछ नया सीख नहीं पाते, अगर सीख भी लें तो वह विषय हमारे लिये उतना अपना नहीं बन पाता जितने कि उस समय सीखे हुए विषय बने होते हैं जब कि उन के सीखने का

स्वाभाविक समय था।

इस लिये अध्यापक का प्रथम कर्तव्य यह है कि वृह देखता रहे कि विद्यार्थी में किस समय कौनसी प्रवृत्ति (Instinct) उत्पन्न होती है। साथ ही विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि वे भविष्य पर किसी विषय को न छोड़ें। हरेक विषय को उस के उचित समय में ही सीख छोड़ें। खास खास आयु में ही खास २ विषयों की ओर रुचि बढ़ती है। वह समय गुजर जाने पर उन विषयों के लिए फिर वैसा उत्साह नहीं रहता।

---

* कुलभूमि *

गङ्ग की तरङ्ग-वारी, हिमगिरि सङ्ग वारी,
पुण्य-प्रेमरङ्ग वारी, विश्व अभिराम है।

सुजन समूह वारी, सुमन-सुरभि वारी,
सरस समीर वारी, सुखद निकाम है॥

ब्रह्मवाद-राग वारी, विषय-विराग वारी,
ब्रह्मचारि-वृन्द वारी, विबुध सुधाम है।

स्वर्ग अपवर्ग वारी, भुक्ति मुक्ति सर्ग वारी,
प्यारी "कुलभूमि" ही हमारी पूर्ण-काम है॥ १॥

श्री हरि

कुल की कहानी

सुनाने लगा एक हूं मैं कहानी,

जो औरों से अब तक सुनी थी जबानी,

नहीं इसमें शक है कि वो है पुरानी,

मगर साथ ही है रहस्यों की खानी॥

ज़रा इसलिए ध्यान से इसको सुनिए।

औ' जो कोई उत्तम हो गुण उसको चुनिए॥ १॥

हिमाचल की बगली में इक बन खड़ा था,

जो अज्ञात सदियों से अब तक पड़ा था,

वो झङ्खाड़ झाड़ी से गुम्फित पड़ा था,

जो कांटे कंटेरी से बिलकुल मढ़ा था॥

कि चिंघाड़ चीते जहां मारते थे।

कि दर्रे पहाड़ों के जो फाड़ते थे॥ २॥

पहलवां भी इक बार थे खौफ़ खाते,

वे जा जा के फिर बीच से लौट आते,

अन्धेरा था इतना कि दिल कांप जाते,

प्रखर भानु भी थे नहीं पार पाते॥

वो झाड़ी ही झाड़ी भरी हर जगह थी,

खड़े होने तक को न तिल भर जगह थी॥ ३॥

वो मस्ते मतङ्गों से खोदा पड़ा था,

या जङ्गल के भैंसों से रोन्धा पड़ा था।

बराहों की दाढ़ों से रोंधा पड़ा था,

औ' खूंखार पशुओं से अब तक भरा था।

यहां पर जहां आज है शामियाना।

था पड़ता दिवस में भी दीपक जलाना॥ ४॥

सुना हमने सब कुछ मगर ये सुनाओ,
ये सारा हुआ कैसे ये तो बताओ,
असम्भव से सम्भव ये कैसे, सुझाओ,
औ' विश्वास जल्दी से हमको दिलाओ ॥
कि कोले से हीरे का ये मूल कैसे ।
सड़े कीच से ये कमल-फूल कैसे ॥ ५ ॥

ये कष्ट सारे थे किसने उठाये,
कंटीले ये जङ्गल थे किसने गिराये,
गरजते वे मृगराज कैसे भगाये,
औ' कैसे वो भागीरथी-तीर आये ॥
अहो ! यज्ञशाला ये क्यों कर रचाई ।
औ' क्यों कर ये सुन्दर सुगन्धी फैलाई ॥ ६ ॥

मैं त्रिंशत् सहस्र इकट्ठे करूंगा,
मैं घर घर में दर दर भी फिरता रहूंगा,
मगर इतना जब तक न मैं कर सकूंगा,
नहीं तब तलक पैर घर में धरूंगा ॥
सुदारुण प्रतिज्ञा ये किसने थी धारी ।
कि आखिर तलक थी न धुन जिसने टारी ॥ ७ ॥

न देता था कोई भी जन यों सहारा,
ये आशा सहित हाथ किसने पसारा ।
निजैश्वर्य राशी को किसने बिसारा,
न आंधी अन्धेरे को कुछ भी विचारा ॥
करी आहुती तन औ' मन धन की अपने ।
औ' आखिर को ऐसे दिखाये हैं सपने ॥ ८ ॥

मैं आचार्य-आदेश कैसे फैलाऊं,
औ' मैं ब्रह्मचारी कहां से बुलाऊं,
मैं कुल को कहां और कैसे चलाऊं,
सहोयोगियों को कहां पर मैं पाऊं ॥
यही एक चिन्ता यही एक लक्ष्य।
भले दुःख आवे, करूंगा अवश्य ॥ ९ ॥

थे प्रस्थान आखिर को कर ही दिया था,
औ' बत्तीस पुत्रों को संग ले लिया था,
उतर रेल से रुख इधर ही किया था,
बस इक "ओ३म्" का हाथ झण्डा लिया था ॥
सुनो, अन्त को सब यहीं पर थे आये।
तथा आके डेरे सभी ने लगाये ॥ १० ॥

ये जङ्गल में मङ्गल ये ऐसे हुआ था,
प्रयत्नों से पौदा लगाया गया था,
पसीना जो इस देह का तब बहा था,
तथा चूंकि उससे ये सिञ्चित हुआ था ॥
इसी ही लिये ये फला फूला इतना।
औ' फूले फलेगा न जाने ये कितना ॥ ११ ॥

ये पुत्रों की अन्तिम मगर याचना है,
या केवल यही एक अभ्यर्थना है,
या अवशिष्ट केवल यही कामना है,
बस अन्तिम से अन्तिम यही प्रार्थना है ॥
कि ओझल न हो कुल की ज्योती प्रभू जी।
कभी भी किसी भी तरह से प्रभू जी ॥ १२ ॥

आश्चर्यमय गुरुकुल

आज गुरुकुल की २५ वीं वर्ष-गांठ के दिन यदि उसके गत जीवन पर एक साधारण दृष्टि डाली जावे तो वह बड़ा आश्चर्य्यमय दीखता है। वह जीवन इतना आश्चर्य्यमय है, जीवन ने इतने जुदे २ भिन्न २ दृश्य दिखलाये हैं कि यदि मैं उसे एक नाटक से उपमा दूं तो कुछ अनुचित न होगा।

गुरुकुल की उत्पत्ति का दृश्य ही बड़ा अनोखा है। जिस तरह पीपल के विशाल वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है, उसी तरह, गुरुकुल का बीज भी बहुत छोटा था। पञ्जाब प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग में विचार पेश था कि बना हुआ वेदभाष्य कैसे किया जावे। इस विषय में लोगों ने कई प्रकार की स्कीमें समाचार-पत्रों द्वारा प्रस्तुत की हुई थीं, जिन का अन्तिम निचोड़ कुलपिता की स्कीम थी। उस स्कीम में उन्होंने बताया था कि एक ऐसा आश्रम खोला जावे जहां कुछ विद्वान् लोग रहें जो वेदभाष्य करने के साथ साथ विद्यार्थियों को पढ़ाया भी करें और इस तरह वेदभाष्य के साथ ब्रह्मचर्य्याश्रम का पुनरुद्धार भी हो सकेगा। यह स्कीम बहुत ही छोटी थी। आज गुरुकुल जिस व्यापक रूप को धारण कर रहा है, वह उस समय उनके भी ध्यान में न था। प्रतिनिधि सभा के उस समय के कार्यकर्ता इस स्कीम को पास करना नहीं चाहते थे। परन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम के पवित्र नाम को सुनते ही आर्य लोगों में एक प्रकार की बिजुली का संचार हो गया। जिस दिन कुलपिता की प्रस्तावित यह स्कीम, आ॰प्र॰सभा पंजाब में पास हुई, उसे कभी भूल नहीं सकते। जब अधिक रात्रि के बीत जाने पर सभासद् थककर ऊंघने लग गये, तब अनावश्यक समझ कर यह स्कीम उस समय पेश कर दी गई। परन्तु इस स्कीम में अद्भुत बिजुली थी, क्योंकि इस स्कीम के आते ही सब लोग चौकन्ने होकर बैठ गये। थोड़े बाद विवाद के पीछे स्कीम पास हो गई, एक गुरुकुल का खोलना निश्चित होगया। उस के लिये तीन सहस्र रुपया मूलधन एकत्रित करना हुवा, और साथ ही यह स्वीकृत हुआ कि आठ हजार रुपया होजाने पर गुरुकुल खोल दिया जावे। अब यह देख कर आश्चर्य्य होगा कि उस समय तीन सहस्र रुपया ही गुरुकुल के लिए काफी समझा गया था, परतु उस समय इस कार्य की इस व्यापकता को कौन जान सक्ता था।

गुरुकुल का खुलना स्वीकृत हो गया। दूसरे दिन ही कुछ लोगों ने धन देने की प्रतिज्ञा भी की, परन्तु

कई महीनों तक यह स्कीम कागजी पुलिन्दे से बाहिर न निकली। लोग उस समय इस काम को असम्भव समझते थे, इस लिए इसके लिए प्रयत्न करना भी कोई अपना कर्तव्य न समझता था। परन्तु ऋषि दयानन्द के लेखों ने कुलपिता के हृदय पर अंकित कर दिया था कि सारे आश्रमों की व्यवस्था सुधारने के लिए ब्रह्मचर्य प्रणाली का पुनरुद्धार अत्यन्त आवश्यक है। जब नींव ही कच्ची है तब उस पर खड़ा किया हुआ भवन मजबूत कैसे हो सका है। कुलपिता उस समय विकालत छोड़कर आजीविका का कोई और ही ढङ्ग सोच चुके थे और इस पवित्र कुल के आचार्य पद के लिए तय्यार नहीं होते थे, किन्तु गुरुकुल के खोलने को अत्यन्त आवश्यक समझ कर, उस के लिए रुपया एकत्र करने का भार उन्होंने अपने ही ऊपर ले लिया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा करली कि तीस हज़ार रुपया इकट्ठा करने के पहिले मैं अपने घर में पांव न धरूंगा। २६ अगस्त १८६६ ई० को मन में यह दृढ़ संकल्प करके वह गुरुकुल के लिए धन इकट्ठा करने बाहिर निकले।

लगभग सात महीने तक संयुक्त प्रान्त, पंजाब, और दक्षिण हैदराबाद से घूम कर उन्होंने गुरुकुल के लिए भिक्षा मांगी। उस समय गुरुकुल के कार्य में जो जो कठिनाइयें थीं, उन का विस्तार से यहां वर्णन करना असम्भव है। उस समय सब से बड़ी कठिनाई इस विचार की नवीनता थी। उस समय तक यह एक ख़याली स्कीम थी; इस प्रणाली पर चलता हुवा कोई विद्यालय उदाहरण के लिए वे लोगों के साम्हने नहीं रख सके थे। लोगों के लिए यह विचार बिल्कुल ही नया था इस लिए भिक्षा मांगने के पहिले मुझे बताना पड़ता था कि गुरुकुल खोलने के क्या उद्देश्य हैं। गुरुकुल के विषय में लोगों की अनभिज्ञता का, इस से बढ़ कर क्या प्रमाण होगा कि कई स्थानों में लोग कुलपिता का ही नाम गुरुकुल समझते थे। ऐसे नये कार्य के लिए धन, आसानी से कैसे मिल सकता था? इस के सिवाय, नये ढंग के पढ़े लिखे लोगों की ओर से भी गुरुकुल की कार्यप्रणाली पर आक्षेप किये जाते थे। वे कहते थे कि सभ्यतामय बीसवीं सदी में ऐसे विद्यालय का चलना सर्वथा असम्भव है। पुराने समय को लाने के प्रयत्न को वे कुलपिता के दिमाग़ की निर्बलता बतलाते थे। सब से बड़ा आक्षेप यह था कि कौन ऐसे पाषाण हृदय माता पिता निकलेंगे जो पच्चीस वर्षों तक अपने प्यारे पुत्रों का बिछोड़ा सहने के लिए तय्यार होंगे। परन्तु कुलपिता को गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के महत्त्व पर इतना पूरा भरोसा था कि इस तरह के आक्षेप उन्हें अपने

उद्देश्य से कुछ भी विचलित न कर सके। मुझे पूरा विश्वास था कि यदि एक बार नहीं तो कई बार ब्रह्मचर्याश्रम का संदेशा सुनाते रहने से लोगों की आंखे अवश्य खुलेंगी, और वे इस की आवश्यकता को अनुभव करेंगे। ऊपर कहे हुवे सब आक्षेपों के होते हुवे भी, जहां कहीं जाकर मैं वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य की और विद्यार्थियों की शोचनीय दशा का वर्णन करते थे, लोगों की आत्माओं को अपने साथ सहमत पाते थे। लोग युनिवर्सिटी की धर्मशून्य शिक्षा प्रणाली के दोषों को अनुभव कर रहे थे; आर्य जाति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ह्रास को देख कर विचार शील लोग कांप रहे थे, परन्तु आर्यसमाज के पास ऐसे उपदेशकों का अभाव था जो धर्म के प्यासों तक धर्म का संदेशा पहुंचा सकें। अतएव जब लोगों को बतलाया गया कि इन सब त्रुटियों को दूर करने का एक मात्र उपाय गुरुकुल ही है, तब उनका ध्यान इधर आकर्षित होने लगा। इस छः सात महीनों के भ्रमण का फल यह हुआ कि तीस हज़ार रुपया इकट्ठा हो गया और सर्वसाधारण गुरुकुल की आवश्यकता को समझने लग गये।

रुपया एकत्र होने के पश्चात् भी कई मासों तक कार्यकर्त्ताओं की शिथिलता से यह कार्य खटाई में पड़ा रहा। सब से बड़ी रुकावट एकान्त स्थान न मिलने की थी। बहुत खोज और विचार के पश्चात्, हरिद्वार के समीप, श्री० मुंशी अमनसिंह जी के दिये हुवे कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल का खोला जाना निश्चित हुआ और इस की अधिष्ठात्री सभा ने इस कार्य का सारा भार कुलपिता पर डाला।

वह दिन मुझे और मेरे साथी ३१ ब्रह्मचारियों को अच्छी तरह याद है, जो उस समय शिवरात्रि से ४ दिन पूर्व १९५८ वि० की फाल्गुन बदी १० (४ मार्च १९०२ ई०) को इस पवित्र भूमि में पहिले पहिल आये थे। हम चार बजे की गाड़ी से हरिद्वार उतरे और दयानन्द का चित्र सामने लेकर वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हम सीधे गुरुकुल-भूमि की ओर चले। हरिद्वार और कनखल के लोग कहते थे कि यहां दयानन्द का मठ बनेगा। कुछ अन्धेरे में हम गुरुकुल पहुंचे और जाते ही हम सब ब्रह्मचारियों ने गङ्गा की शीतल धारा में गोता लगाया। उस समय यहां बड़ा घना जंगल खड़ा था। उस में से थोड़े से स्थान को साफ़ कर के रहने के लिए और पढ़ाई के लिये कुछ छप्पर और तम्बू लगाये गये थे। आने के कुछ दिन पीछे गुरुकुल की स्थापना का उत्सव हुआ, जिस में चार सहस्र रुपया भी पूरा इकट्ठा न हो सका।

उस दिन और आज में बड़ा अन्तर है। गत पच्चीस वर्षों में गुरुकुल ने जो

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आश्रम का भीतरी दृश्य

गुरुकुल कुरुक्षेत्र की यज्ञशाला

उन्नति की है, उसे अचम्भे के सिवाय और कुछ नहीं कह सके। जो विद्यालय ३२ ब्रह्मचारियों से शुरु हुआ था, वहां आज ३३१ बालक शिक्षा पारहे हैं। इसके अतिरिक्त ७ शाखा-गुरुकुल हैं, जिन में एक कन्या-गुरुकुल भी है, और इन सब शाखाओं में लगभग ६७० के बालक और बालिकायें शिक्षा पा रहीं हैं। जिस गुरुकुल के विषय में यह पूछा जाता था कि वहां अपने पुत्रों को कौन भेजेगा वहां आज यह दशा है कि प्रति वर्ष डेढ़ सौ से ऊपर बालक और बालिकायें प्रविष्ट होती हैं। जहां घना जङ्गल था, वहां आज हरा भरा उद्यान दिखाई दे रहा है, और दो चार फूंस की झोपड़ियों की जगह आज आध मील तक फैली हुई गुरुकुल को इमारतें दिखाई दे रही हैं। जहां पहिले छोटा सा विद्यालय था वहां अब तीन महाविद्यालयों का संचालक विश्वविद्यालय है।

परन्तु मैं इन ईंट पत्थरों के फैलाव को गुरुकुल की वास्तविक उन्नति नहीं समझता। गुरुकुल की वास्तविक उन्नति के चिन्ह अन्दर और बाहर इन से जुदा हैं। बाहिर गुरुकुल की वास्तविक उन्नति उस की शिक्षा-प्रणाली के सामने लोगों का सिर झुकाना है। स्थान की कमी मुझे आज्ञा नहीं देती कि मैं शिक्षा प्रणाली के विषय में उन परिवर्तनों का वर्णन करूं जो इस समय विद्वान् लोगों के विचारों में हो रहे हैं। किन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष का शिक्षित समाज हमारी शिक्षाप्रणाली के महत्व को मानने लग गया है और हमारे परीक्षण को टक टकी लगाये देख रहा है। गुरुकुल की भीतरी अवस्था को वे ही लोग जान सकते हैं जो गुरुकुल के अन्दर काम करते हैं। जितना ही गुरुकुल विषयक लोगों का अनुभव बढ़ रहा है, उतना ही उन्हें दृढ़ विश्वास होता जाता है कि यदि कोई ऐसी संस्था है जो धार्मिक, आज्ञापालक, परिश्रमी, उत्साही और समाजसेवी मनुष्य बना सका है तो वह गुरुकुल ही है।

—

मेरा तपोवन

१

जहाँ विश्वमें सब से पहिले हुआ सवेरा।
है वही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥

२

जन्हु-सुता की जहाँ विमल धारा बहती है।
जिस पर उच्च हिमाचल की छाया रहती है।
जहाँ खड़े हैं विकसित द्रुम-दल शोभाशाली।
जहाँ छिटकती शुभ्र चाँदनी खिलने वाली।
जहाँ 'प्रकृति' में सब से पहले हुवा सवेरा।
है यही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥

३

जहाँ धर्म की ज्योति निराली नभ में छाई।
'ब्रह्म ब्रह्म' की टेर जहाँ नित देत सुनाई।
घने वनों में जहाँ दिव्य रव गूंज रहा है।
जहां हृदय आनन्द-सिन्धु में डूब रहा है।
जहाँ 'भक्ति' में सब से पहले हुवा सवेरा।
है यही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥

४

जहाँ खड़ी स्वाधीन-पताका फहराती है।
जिसे देख कर इन्द्र-ध्वजा भी शरमाती है।
धर्म-युद्ध के हेतु जहाँ उठतीं तरवारें।
जहाँ चण्डिका नाच रही है कर हुंकारें।
जहाँ 'शक्ति' में सब से पहले हुवा सवेरा।
है यही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥ ३ ॥

पं० विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार

गुरुकुल-शिक्षा--प्रणाली

(लेखक— श्री प्रो० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार पालीरत्न)

शिक्षा के उद्देश्य

बड़े २ विद्वान विभिन्न दृष्टियों से विचार करते हैं कि शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहियें, परन्तु वे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर उतनी स्पष्टता से नहीं देते जितनी स्पष्टता और निश्चयात्मकता से देना चाहिए। निरुक्तकार यास्काचार्य इस गम्भीर प्रश्न का हल तीन अक्षरों के 'आचार्य' शब्द में पाते हैं। यह संस्कृत भाषा की अपूर्व और विचित्र महिमा है कि उसका प्रत्येक शब्द अपने में बड़े विस्तृत ज्ञान को ढाँपे रखता है। 'आचार्य' का निर्वचन करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं— "आचार्य आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुद्धिम्" अर्थात् आचार्य वह है जो शिष्य को सदाचार ग्रहण करावे, उसमें शब्दों के अर्थों का सञ्चय करे, और उसकी बुद्धि को बढ़ावे। बस, शिक्षा के एकमात्र यही तीन उद्देश्य होने चाहियें कि (१) विद्यार्थी के सदाचार का निर्माण किया जावे, (२) उसे प्रत्येक शब्द के यथार्थ अर्थ का साक्षात्कार कराते हुए उसमें वस्तुओं का यथार्थ बोध संचित कर दिया जावे, (३) और उसकी ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि को पूर्णतया विकसित किया जावे।

यदि वर्तमान युनिवर्सिटियों की शिक्षा-पद्धति की ओर दृष्टि डाली जावे तो हमें साफ़ तौर पर विदित होता है कि सदाचार-निर्माण, पदार्थावबोध और बुद्धि-विकाश, शिक्षा के इन तीन उद्देश्यों में से प्रथम और अन्तिम उद्देश्य को सर्वथा भुलाया हुआ है। सदाचार-निर्माण तो शिक्षा के क्षेत्र में से वहिष्कृत है ही, परन्तु इसके साथ साथ कृत्रिम पाठप्रणाली की यन्त्रकला में से बिना किसी ननु नच के प्रत्येक विद्यार्थी को गुजारने से उनकी ईश्वरप्रदत्त बुद्धि का विकाश भी नहीं हो पाता। होना तो यह चाहिए था कि जैसे सूर्योदय के होने पर सूर्य-प्रकाश से रोग-कृमि नष्ट होजाते हैं, चोर चोरी से और जार जारी से विरत होजाते हैं, मलिनता दूर हो जाती है और बन्द कमल खिल जाता है, उसी प्रकार विद्योदय के होने पर विद्या-प्रकाश से काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मल दूर हों, पाप-कृमि नष्ट हों, और बुद्धि-कमल का विकाश हो। परन्तु इस माया-रूप-धारिणी विद्या से पाप-मल की वृद्धि होती है, और बुद्धि-कमल बिना खिले ही मुरझा जाता है।

एवं, शिक्षा के दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए किताबी शिक्षा की ओर ही ध्यान दिया जाता है। ऐसी शिक्षा

से दूसरा उद्देश्य भी पूर्णतया पूरा नहीं होता, पदों की रटन्त पर पूरा बल लगाया जाता है, पदार्थावबोध यथार्थ में नहीं होता। इससे पाठक समझ सकते हैं कि आधुनिक युनिवर्सिटी-शिक्षा-पद्धति कितनी दोषपूर्ण है। यह शिक्षा-पद्धति वह है जो कि शिक्षा के तीनों उद्देश्यों में से किसी भी उद्देश्य को सच्चे अर्थों में पूर्ण नहीं करती। इसलिए हमारे ऋषियों ने जो गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की थी, वह विवेकपूर्ण है और वही वास्तव में मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली है। वह शिक्षा-प्रणाली कैसी है, उसे मैं ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश के आधार पर ही बतलाना चाहता हूँ जिससे विद्वान् लोग उस पर अधिकाधिक विचार करते हुए विद्यार्थियों के जीवनों को सफल बना सकें।

गुरुकुल-प्रवेश से पूर्व अपनी सन्तान के प्रति माता पिता के कर्त्तव्य-

(१) जन्म से पाँचवें वर्ष तक माता और छठे से आठवें वर्ष तक पिता अपनी सन्तान को शिक्षा दिया करे।

(२) जब पाँच वर्ष का लड़का वा लड़की हो तब उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें और अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

(३) इसके पश्चात् जिन से उत्तम शिक्षा, विद्या, धर्म तथा परमेश्वर का बोध हो, और जिन से माता पिता आचार्य विद्वान् अतिथि राजा प्रजा कुटुम्ब बन्धु भगिनी तथा भृत्य आदि से कैसे बर्तना चाहिए, इसका उत्तम ज्ञान प्राप्त हो, उन मंत्रों तथा श्लोकों सूत्रों और गद्य पद्यों को भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें।

(४) इसके अतिरिक्त जो २ विद्या-धर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश करदें जिससे उन्हें भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों पर विश्वास न हो।

(५) माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तानों को वीर्यरक्षण में आनन्द और वीर्यनाशम से दुःख की प्राप्ति होती है, इसे भी भली भाँति जतला दें। जैसे— "देखो, पुत्रो! जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है, उसे आरोग्यता बुद्धि बल और पराक्रम की वृद्धि होकर बहुत सुख की प्राप्ति होती है। वीर्यरक्षा की यही रीति है कि तुम अष्टों मैथुनों से पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करो। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक तथा महाकुलक्षणी बन जाता है, वह प्रमेह रोग से युक्त होजाता है जिससे वह दुर्बल निस्तेज और निर्बुद्धि हुआ हुआ उत्साह साहस धैर्य बल पराक्रम आदि से रहित होकर नष्ट होजाता है। यदि तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण तथा वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं होसकेगा।

जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले हैं, तब तक तुमको विद्या का ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए ।"

गुरुकुल का स्थान कैसा हो

(१) विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए ।

(२) पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् ४ कोस दूर ग्राम या नगर रहे ।

(३) लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये ।

गुरुकुल--प्रवेश के नियम

(१) इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो ।

(२) लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेजना चाहिए ।

गुरुकुल के नियम

(१) जो अध्यापक, पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उन से शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं ।

(२) जो अध्यापिका और अध्यापक, भृत्य वा अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्रियें और बालकों की पाठशाला में सब पुरुष हों ।

(३) कन्याओं की पाठशाला में ५ वर्ष का लड़का, और लड़कियों की पाठशाला में ५ वर्ष का लड़का भी न जाने पावे । अर्थात्, जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक लड़का या लड़की का दर्शन स्पर्शन एकान्त-सेवन भाषण विषय-कथा परस्परक्रीड़ा विषय का ध्यान और सङ्ग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें । अध्यापक लोग उन को इन बातों से बचावें, जिस से वे उत्तम विद्यावान् सुशिक्षित सुशील और उत्तम स्वभाव वाले तथा शरीर और आत्मा से बलवान् होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें ।

(४) सब को तुल्य वस्त्र खानपान और आसन दिये जावें, चाहे वे राजकुमार वा राजकुमारी हों और चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये ।

(५) माता पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्रव्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिस से वे सारी चिन्ताओं से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें ।

(६) जब भ्रमण करने जावें तब उन के साथ अध्यापक रहें जिस से वे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें ।

(७) जहां गुरुजन शिष्यों का ताड़न करते हुए उन्हें अमृत पिलाते हैं और लाड़न करते हुए उन्हें अपने

ही हाथों से विष-पान कराके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं, वहां शिष्यां को भी चाहिए कि वे ताडना से सदा प्रसन्न और लाड़न से सदा अप्रसन्न रहा करें, इस से विपरीत आचरण कभी न करें। परन्तु गुरुजनों को सदा ध्यान रखना चाहिये कि वे ईर्ष्या या द्वेष से कभी ताड़न न करें, अपितु ऊपर से भय-प्रद्न और भीतर से कृपादृष्टि रखें।

ऋषि दयानन्द को अपना आचार्य मानने वाले आर्य लोग आचार्य के गुरुकुल-संम्बन्धी इन संकेतों पर विशेष ध्यान दें और देखें कि वे किस मार्ग को ओर चल रहे हैं, और जो आर्य अपनी सन्तान को गुरुकुलों में न भेज कर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की अवहेलना करते हैं, क्या वे अपने आचार्य की आज्ञानुसार दण्ड के भागी नहीं ?

कुल--वन्दना

जय जय जननि ! कुलदेवि ! तुझ को बार बार प्रणाम है।
यह मञ्जु अञ्जलि प्रेममय, अर्पित तुझे अभिराम है॥ १॥

महिमा हिमालय की शिखायें, गा रहीं तेरी स्वयम्।
भागीरथी की बीचियों में, स्पष्ट तेरा नाम है॥ २॥
हम देखते तुझ में सदा, नव प्रेम का उल्लास है।
हम को मधुरतम गोद ही, तेरा परम विश्राम है॥ ३॥
तेरे विशद आकाश की, स्वाधीनता में हम पले।
स्वर्गीयता-मिश्रित जहां, उज्ज्वल उषा का धाम है॥ ४॥
तेरे वनों की स्तब्धता में, दिव्य कोई राग है।
सब ओर से मानो बरसता, पुण्य का परिणाम है॥ ५॥
तूने हृदय मोती पिरो कर, प्रेम के दृढ़ सूत्र में।
अनुपम बनाई यह हमारी, चारु मुक्ता दाम है॥ ६॥
तू ही बजाती वीणा वह, जिस के कि हम सब तार हैं।
जो तार सारे एक स्वर हो, कह रहे अविराम हैं॥ ७॥
हम हैं सदा तेरे, हमारी तू हृदय-वर-वासिनी।
सम्बन्ध यह तेरा हमारा, नित्य है निष्काम है॥ ८॥

गुरुकुल-वृक्ष

'आश्चर्यमय गुरुकुल' शीर्षक वाले लेख में दर्शाया जा चुका है कि किस प्रकार १६०२ ई० की ४ मार्च को कांगड़ी की पवित्र भूमि में लगाया हुआ नन्हा सा गुरुकुल रूपी वृक्ष फूला और फला। इस वृक्ष के जो महत्त्व हैं, वे संक्षेप से इस प्रकार कहे जा सकते हैं कि यह संपूर्ण राष्ट्र का अपनाया हुआ है, छूत अछूत सब को आश्रय देने वाला है, उत्तम जीवन का प्रदाता है, सन्तप्तों को शान्ति देता है, भारत के प्राचीन गौरव का प्रत्यक्षतया भासमान चिन्ह है, और भारतभूमि का मुख उज्वल करने वाला है। वर्तमान समय में वेद महाविद्यालय महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय, ये तीन बड़े २ स्कन्ध हैं। इस वृक्ष को उत्पन्न हुए ४ मार्च १६२७ ईस्वी को २५ वर्ष व्यतीत होगए। गत १६ वर्षों में इस वृक्ष के सिंचन में लगभग २० लाख ७५ हज़ार रुपए व्यय हुए, नक़द और जायदाद मिलाकर लगभग साढ़े दस लाख रुपए इस की रक्षा के लिए विद्यमान हैं, और इस वर्ष के १५ फल मिला कर कुल १६२ फल इस वृक्ष से आर्यजाति को प्राप्त हो चुके हैं। इस सुप्रसिद्ध पवित्र वृक्ष और इस की सात शाखाओं की निर्मल छाया में बैठकर इस समय लगभग एक सहस्र बालक और बालिकायें शिक्षा पा रही हैं। यह वृक्ष अमर श्रद्धानन्द के हाथों से लगाया हुआ है और उन्हीं के रुधिर से सींचा हुआ है। ऐसे अद्भुत वृक्ष की पच्चीसवीं वर्ष-गांठ मनाते हुए आर्य जाति को कुछ विशेष प्रण करने चाहियें। आर्य-जाति से मैं केवल दो प्रणों की अभ्यर्थना करता हूँ; एक तो यह कि अपने आचार्य ऋषि दयानन्द की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सन्तानों को विष-वृक्षों के नीचे शिक्षा के लिए न बैठा कर गुरुकुल-वृक्ष के ही नीचे बैठाना अपना कर्तव्य समझे, और दूसरा, इस वृक्ष के सिंचन में तन मन और धन, किसी की कमी न रखें। ऐसा न हो कि आर्यजाति की असावधानता से अमर श्रद्धानन्द का लगाया हुआ यह भारत-पावक वृक्ष कभी मुरझा कर सूख जावे, और फिर पीछे पछता कर सिर नीचा किये सब से यह सुनना पड़े कि अब पछताने से क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत। अतः, ऐ आर्यजाति के वीरो, उठो, कमर कस कर तय्यार होवो, अब अधिक प्रतीक्षा का काल नहीं रहा।

— चन्द्रमणि

कुलगीत

प्राणों से हम को प्यारा 'कुल' हो सदा हमारा ॥

(१)

विष देने वालों के भी बन्धन कटाने वाले,
मुनियों का जन्म-दाता कुल हो यही हमारा ॥

(२)

'कट जाय सिर न झुकना' यह मन्त्र जपने वाले,
वीरों का जन्म दाता कुल हो यही हमारा ॥

(३)

स्वाधीन्य-दीक्षितों पर सब कुछ बहाने वाले,
धनियों का जन्म दाता कुल हो यही हमारा ॥

(४)

निज जन्म भूमि भारत को क्लेश से छुड़ा कर,
गौरव बढ़ाने वाला कुल हो यही हमारा ॥

(५)

तन मन सभी न्योछावर कर वेद का संदेसा,
जग में ले जाने वाला कुल हो यही हमारा ॥

(६)

हिमशैल तुल्य ऊंचा, भागीरथी सा पावन,
भटकों का मार्ग-दर्शक दुखियों का हो सहारा ॥

(७)

आजन्म ब्रह्मचारी ज्योती जगा गया है,
अनुरूप पुत्र उस का कुल हो यही हमारा ॥

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अध्यापक गण तथा ब्रह्मचारीवर्ग

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अध्यापक वर्ग तथा कार्यकर्त्ता

गुरुकुल काङ्गड़ी की शाखायें

(१)

शाखा-गुरुकुल मुलतान

डेराबुद्धू मुलतान के चौधरी म० रामकृष्ण जी के भूमि और नक़द दान देने पर और शाखा गुरुकुल खोलने के लिए बहुत आग्रह करने पर आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की अन्तरंग सभा ने २ अगस्त १६०८ को दानी के दान को स्वीकृत करके शाखा खोलने का निश्चय किया। तदनुसार १३ फर्वरी १६०६ के दिन डेराबुद्धू में इस गुरुकुल की स्थापना हुई जिस का नाम "शाखा-गुरुकुल देवबन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह गुरुकुल कांगडी की सब से पहली शाखा थी। इस शाखा के प्रबन्ध के लिए स्थानिक आर्यपुरुषों की एक गुरुकुल-सभा बना दी गई जो बड़े उत्साहमय पुरुषार्थ और जोश से काम करने लगी। थोड़े ही दिनों में कई हज़ार रुपयों की लागत के पक्के मकान और कूप आदि तय्यार होगए। परन्तु दौर्भाग्य से दो तीन वर्षों में ही दानी चौधरी जी की मति बदल गयी और उन्होंने गुरुकुल के चलाने में अनेक बाधाएं डालनी शुरु कीं। लाचार होकर गुरुकुल देवबन्धु से उठाना पड़ा, और मुलतान शहर के बाहिर हजूरीमल के बाग में मुलतान के प्रतिष्ठित वकील ला० परमानन्द जी ने जो अपनी बड़ी २ दो कोठियें अस्थायी तौर पर इस के निमित्त अर्पण कर दी थीं वहां रखा गया। वहां आकर उस समय के मुख्याधिष्ठाता पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार और स्थानिक सभा के मंत्री ला० मदनलाल जी ने अनेक यत्न किए कि शायद चौधरी जी की मति फिर बदल जावे, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। तब मुलतान से लगभग तीन मील की दूरी पर ताराकुण्ड के समीप स्थायी तौर पर इस शाखा को स्थापित किया गया। यह भूमि ६५॥ बीघे है, जिस का आनुमानिक मूल्य ६ सहस्र रु० है। अब तक मकानों और कूप आदि पर ३० सहस्र रु० व्यय हो चुके हैं। इसकी पुरानी देवबन्धु वाली भूमि के सम्बन्ध में चौधरी रामकृष्ण जी के साथ झगड़ा चल रहा था, वह गतवर्ष निपट गया है और वहां के मकानों की क्षतिपूर्त्ति के लिए चौधरी जी ने १७ सहस्र रु० आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को दे दिए हैं।

पहले इस शाखा में १०श्रेणियों तक पढ़ाई का प्रबन्ध था। कई वर्ष यहां के दशम श्रेणी के ब्रह्मचारी गुरुकुल कांगडी अधिकारी परीक्षा के लिए आते रहे और बड़े योग्य सिद्ध हुए। इस वर्ष तक २० स्नातक ऐसे हो चुके हैं जो यहीं से अधिकारी परीक्षा के लिए गए थे। परन्तु इस वर्ष स्थानिक प्रबन्धकर्त्री सभा ने यह निश्चय कर लिया है कि यह शाखा प्रथम आठ

श्रेणियों तक ही रक्खी जावे। तदनुसार इसकी नवम श्रेणी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भेजदी गई है। अब इस समय इस शाखामें १०५ ब्रह्मचारी शिक्षा पा रहे हैं।

(२)

शाखा—गुरुकुल कुरुक्षेत्र

संवत् १९६७ में थानेसर शहर के सुप्रसिद्ध रईस ला० ज्योतिप्रसाद जी के मन में यह शुभ विचार उत्पन्न हुआ कि वे भी गुरुकुल कांगड़ी की शाखा अपने यहां खुलवायें। इन्होंने अपने ये विचार महात्मा मुन्शीराम जी [श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज]मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के सामने रखे। तदनुसार सं० १९६९ को १ वैशाख को श्री महात्मा मुन्शीराम जी ने इस गुरुकुल की आधार-शिला रक्खी। ला० ज्योतिप्रसाद जी रईस ने प्रारम्भ में १००००) नकद तथा १०४८ बीघा भूमि इस कार्य के अर्पण की।

प्रारम्भ में इस गुरुकुल के मुख्याध्यापक श्री पं० विष्णुमित्र जी रहे। प्रबन्धकर्ता का काम ला० ज्योतिप्रसाद जी करते रहे, और उनके मित्र ला० भगीरथलाल जी भी तन मन धन से गुरुकुल की सहायता करते रहे।

दौर्भाग्य से गुरुकुल खुलने के १ वर्ष बाद ही ला० ज्योतिप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु से गुरुकुल को बड़ी हानि हुई। उनके बाद कैथल के ला० नौबतराय जी निस्स्वार्थ-भाव से बड़ी लगन के साथ प्रबन्धकर्ता का कार्य करने लगे। इस प्रकार दिन प्रतिदिन यह गुरुकुल अधिकाधिक उन्नति करता गया। संवत् १९७३ में इस गुरुकुल का प्रबन्ध एक स्थानीय कमेटी के हाथ में दिया गया। परन्तु फिर इसका प्रबन्ध मुख्याधिष्ठाता कांगड़ी के सीधे निरीक्षण में ही आ गया। सं० १९८० में प्रथम वार यहां से ६ ब्रह्मचारी ८ म श्रेणी पास करके गुरुकुल कांगड़ी गये और तब से प्रतिवर्ष ८ म श्रेणी के बाद ब्रह्मचारी वहां पर जाते हैं।

वर्त्तमान समय में इस गुरुकुल में ८ श्रेणियें है। जिनमे लगभग १५० ब्रह्मचारी भारत के भिन्न २ प्रान्तों से आकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अध्यापकों की संख्या ६ है। पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार इस शाखा के मुख्याध्यापक तथा प्रबन्धकर्ता हैं।

स्थान— देहली से कालका जाते समय मार्ग में कुरुक्षेत्र जन्कशन नाम का एक स्टेशन है। इस स्टेशन से पहोवा तीर्थ को १ पक्की सड़क जाती है। इसी पक्की सड़क के बायें हाथ कुरुक्षेत्र तीर्थ से १ मील दूर गुरुकुल कुरुक्षेत्र बना हुआ है।

गुरुकुल के प्रथम वार्षिकोत्सव के अवसर पर इसका बुनियादी पत्थर रखते समय गुरुकुल के आचार्य श्री महात्मा मुन्शीराम जी [श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी] ने निम्न लिखित वाक्य कहे थे "आज हमारी प्यारी भारतभूमि पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई है। एक समय था जब कि संपूर्ण संसार के राजा आर्यावर्त के सम्राट् के चरण-रज को माथे पर लगाने में

अपना गौरव समझते थे। आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व इसी कुरुक्षेत्र भूमि में आर्यावर्त के नाश का बीज बोया गया था। आज उसी भूमि में आर्यावर्त की उन्नति के लिये यह बीज बोया गया है"।

कुरुक्षेत्र की इस भूमि में शाखा स्थापित करने का रहस्य तथा उद्देश्य कुलपति जी के भाषण की उपर्युक्त पंक्तियों से समझ में आ जाता है।

आज गुरुकुल को स्थापित हुए १६ वर्ष व्यतीत हुये हैं। इस थोड़े से समय में गुरुकुल ने पर्याप्त उन्नति की है। वर्त्तमान समय में इस गुरुकुल की लगभग ८००००) अस्सी हज़ार रुपये की लागत की पक्की इमारतें हैं। लगभग २०० ब्रह्मचारियों के निवास तथा पठन पाठन के लिये पर्याप्त मकान हैं। आश्रम से उत्तर की तरफ ब्रह्मचारियों के स्नान के लिये स्नानगृह बना हुआ है, जिस में लगभग ४१ ब्रह्मचारी एक साथ स्नान कर सकते हैं। दक्षिण की तरफ़ भोजन-भण्डार है। उसके पास ही परिवार-गृह बने हुए हैं।

गौशाला—ब्रह्मचारियों को प्रातः सायं ताजा दूध दिया जा सके, इसके लिये गुरुकुल की अपनी गौशाला है, जिसमें १०० के लगभग पशु हैं। कृषि आदि के लिये ५ जोड़ी बैलों की रखी हुई हैं।

वाटिका— ब्रह्मचारियों को ताजी सब्ज़ी तथा फल आदि देने के लिये १० बीघे पक्के का एक बाग है, जिस से ब्रह्मचारियों के लिये प्रतिदिन दो अढ़ाई मन के लगभग ताज़ी सब्जी निकल आती है। अनार, अंगूर, आड़ू सन्तरे, आम, अञ्जीर, केला आदि फल भी पर्याप्त मात्रा में इस वाटिका से ब्रह्मचारियों के लिये प्राप्त हो जाते हैं।

चिकित्सालय — वर्त्तमान समय में आश्रम के बीच में ही चिकित्सालय तथा रोगी-गृह हैं। शीघ्र ही आश्रम से कुछ दूर पश्चिम की तरफ़ पृथक् चिकित्सालय गुरुकुल के प्रबन्धकर्ता स्वर्गीय ला० नौबतराय जी के स्मारक में बनाया जायगा। गुरुकुल के १४ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इसकी आधार-शिला रखी थी।

पुस्तकालय— विद्यालय के साथ ही गुरुकुल का अपना पुस्तकालय है जिसमें इस समय लगभग २००० पुस्तकें हैं।

विज्ञान-भवन— विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा देने के लिये विज्ञान भवन में लगभग २०००) के मूल्य के उपकरण हैं।

कला-भवन— विद्यार्थियों को कपड़ा बुनना तथा अन्य दस्तकारी का काम सिखलाने के लिये शीघ्र ही कला-भवन की योजना की जाने वाली है। खड्डियें आ चुकी हैं, कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ करने का विचार है।

जायदाद— इस गुरुकुल के पास लगभग २२०० बीघा जमीन है जिस में चार कूप हैं।

(३)

शाखा—गुरुकुल मटिण्डू

यह संस्था हरियाणा प्रान्त में शिक्षा की भारी न्यूनता को अनुभव करके श्री चौधरी पीरुसिंह आदि उत्साही आर्यसज्जनों द्वारा जिला रोहतक के मटिण्डू ग्राम के समीप, यमुना नहर की एक छोटी शाखा के किनारे अत्यन्त रमणीक स्थान पर १९७२ वि० में स्थापित की गई, जिस की आधार शिला श्रीयुत पूज्यपाद श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा रक्खी गई। यह संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की शाखा रूप में खोली गई है।

विशेषतायें—(१) यह संस्था सर्वथा निःशुल्क संस्था है। इस में ब्रह्मचारियों को शिक्षा तो निःशुल्क दी ही जाती है किन्तु उनके भरण पोषण का व्यय भी गुरुकुल की ही ओर से होता है।

(२) ब्रह्मचारियों को इस योग्य बनाया जाता है कि अवसर पड़ने पर प्रत्येक कार्य को स्वयं कर सकें।

प्रबन्ध—संस्था का प्रबन्ध एक कमेटी के आधीन है। जो महाशय १००) एक दम या ६) वार्षिक चन्दा देवे, वह कमेटी का सदस्य हो सकता है। इस के मुख्याध्यापक गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री प० निरञ्जनदेव जी विद्यालंकार हैं। इन्हीं के आधीन विद्यालय तथा आश्रम आदि का सम्पूर्ण प्रबन्ध है।

विद्यालय—इस समय विद्यालय में ७ श्रेणियां हैं और लगभग ६० ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं। ६ साल से लगातार यहां के विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर गुरुकुल कांगड़ी में अध्ययनार्थ जाते है। शाखाओं से जो ब्रह्मचारी कांगड़ी जाते हैं, उन्हें वहां के नियमानुसार शुल्क देना पड़ता है, किन्तु यहां के ब्रह्मचारियों के लिए शुल्क मे ५) की रिआयत करदी गई है। विद्यालय की पाठविधि गुरुकुल कांगड़ी की पाठविधि के अनुसार है।

वाटिका—नहर के किनारे पर गुरुकुल की एक रम्य वाटिका है, जिस में विविध प्रकार के फलों के वृक्ष तथा नानाप्रकार के मनोहर पुष्पों के पौदे हैं। यह वाटिका समयानुसार शाक की आवश्यकता को भी पूरी कर सकती है।

गोशाला—ब्रह्मचारियों के दुग्ध-पान के लिए एक गोशाला भी है, जिस मे इस समय ४० गौएं तथा १० भैंसें है। यहां के ज़मीदारों से वैशाख तथा ज्येष्ठ मास में गौशाला के लिये भूसा एकत्रित किया जाता है, जिस से गोशाला को पर्याप्त सहायता मिल जाती है।

सहायता—इस हरियाणा प्रान्त के जाट ज़मीदार बड़े उत्साही तथा

दानवीर हैं। उन्हीं के उत्साह का फल है कि यह संस्था निःशुल्क होती हुई भी उत्तमता से अपना कार्य कर रही है। जनरल कमेटी द्वारा नियुक्त डेपुटेशनों से वैशाख और ज्येष्ठ के महीनों में जमीदारों से अनाज और गौओं के लिए भूसा तथा माघ मास में गुड़ इकट्ठा किया जाता है। अनाज सालभर में कम से कम ६०० मन के लगभग एकत्रित हो जाता है, और विवाह संस्कारों में प्रतिवर्ष दो या अढ़ाई हजार के लगभग धन दान में आजाता है। इस के अतिरिक्त वार्षिक उत्सव पर दो या अढ़ाई हज़ार के लगभग धन प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार यह संस्था ११ वर्षों से इस प्रान्त में सफलता से अपना कार्य कर रही है।

सम्पत्ति—इस गुरुकुल के पास ५६ बीघे ज़मीन है जिस का मूल्य लगभग ५६००) है। अब तक मकानों और कूप पर लगभग ५५००) व्यय हुए हैं और गोशाला के पशुओं का मूल्य लगभग ५०००) है। एवं, इस गुरुकुल की संपूर्ण संपत्ति १६०००) की है। इस संस्था का वार्षिक खर्च १०००) के लगभग है।

नवीन मकानात— इस संस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखकर इसके मकानात में वृद्धि करने की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हुई है। अतएव उनके बनवाने के लिए १६५०) की एक लाख दस हज़ार ईन्टे और २००) का चूना तथा २००) के गार्डर, टीन आदि सब सामान समीप के बन में पड़ा हुआ है। पर्याप्त धनराशि प्राप्त हो जाने पर कार्य प्रारम्भ किया जावेगा। दानी महाशयों को इधर ध्यान देना चाहिए।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी और गुरुकुल मटिण्डू— यह संस्था श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के ही कर-कमलों से स्थापित हुई थी। इसकी उन्नति के लिए उन्हें अत्यन्त चिन्ता रहती थी। वे इसके उत्सव और अन्य समयों पर भी पधारा करते थे। इस संस्था के नूतन भवन बनवाने के लिए उन्होंने कई स्थानों से सहायता दिलवाई। बलिदान से एक मास पूर्व जो मटिण्डू के मुख्याधिष्ठाता को पत्र लिखा, उस पर आर्यजनता को विशेष ध्यान देना चाहिये। उस में वे लिखते है—"तुम्हारे गुरुकुल के लिए मुझे विशेष ध्यान है जब कभी मौका मिला इस के भवन निर्माणार्थ सहायता दिलवाऊंगा।"

(४)

शाखा—गुरुकुल रायकोट

गुरुकुल रायकोट की आधार-शिला श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सम्वत् १९७६ वि० में रखी थी। इसके मुख्य सञ्चालक श्री स्वामी गङ्गागिरि जी महाराज हैं।

इस गुरुकुल के दो विभाग हैं, एक

गुरुकुल कांगड़ी का शाखा-विभाग, और दूसरा उपदेशकविद्यालय का।प्रथम चार श्रेणियों तक गुरुकुल कांगड़ी का शाखा-विभाग है । इस में गुरुकुल कांगड़ी की निर्धारित पाठविधि ही पढ़ाई जाती है । चतुर्थ श्रेणी पास करने के पश्चात् ब्रह्मचारी को गुरुकुल कांगड़ी में भेजा जा सकता है, अन्यथा आगे यहीं पर "उपदेशक विभाग की पढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है जिस में उपदेशक विद्यालय की पाठविधि के अतिरिक्त आंगलभाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा संस्कृत के बहुत से उपयोगी विषय भी पढ़ाये जाते हैं। यह उपदेशक विभाग संवत् १९७९ वि०में स्थापित किया गया था। इस समय उपदेशक विभाग में, सिद्धान्तशिरोमणि के तृतीय वर्ष तक की पढ़ाई हो रही है, सिद्धान्त वाचस्पति का भी प्रबन्ध करलिया गया है । उपदेशक विभाग और शाखा विभाग दोनों को मिला कर इस समय कुल ११ श्रेणियाँ हैं, और ५० विद्यार्थी तथा ८ अध्यापक हैं।

इस गुरुकुल में गुरुकुल काङ्गड़ी के नियमानुसार ही सब कार्य होते हैं। ६ से ९ वर्ष तक बालक प्रविष्ट होते हैं, विशेषावस्था में १० वर्ष तक के भी ले लिये जाते हैं। शिक्षा, निवास, चिकित्सा तथा प्रबन्धादि सब मुफ्त होते हैं। ब्रह्मचर्य्य-पालन के अन्य सब नियम पालन करवाये जाते हैं । यहां किस परिश्रम से शिक्षा दी जाती है, गुरुकुल कांगड़ी के परीक्षक इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। इस वर्ष परीक्षा में १०० प्रतिशतक विद्यार्थी पास हुए। ब्रह्मचारी व्रतपाल ने ९७ प्रतिशतक नम्बर लिये तथा दूसरे नम्बर में रहने वाले ब्र० विद्यारत्न ने ९३ प्रतिशतक नम्बर प्राप्त किये। ब्रह्मचारी व्रतपाल को गुरुकुल में प्रथम रहने के कारण "श्रद्धानन्द स्वर्णपदक" दिया गया।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दो सभायें हैं, जिन में वे व्याख्यान निबन्ध तथा कवितादि का अभ्यास किया करते हैं । एक "वाग्वर्धिनी सभा" जिस के कार्य हिन्दी भाषा में सम्पादित होते हैं, तथा एक "विद्या विनोदिनी सभा" जिसके कार्य संस्कृत भाषा में होते हैं। ब्रह्मचारी सचित्र मासिक पत्र भी निकालते हैं जिसका सम्पादक ब्र० सत्यपाल है । अभी यह हस्तलिखित निकलता है, किन्तु कई सज्जनों ने उसकी उपादेयता को अनुभव कर इसको छाप कर निकालने के लिये आग्रह किया है, इसके लिये प्रबन्ध किया जा रहा है। ब्रह्मचारियों का एक संस्कृत मासिक पत्र "भूषण" नामसे निकालने का भी विचार है।

इस गुरुकुल की जायदाद लगभग ४००००) चालीस हज़ार रुपये की है। इस का वार्षिक व्यय लगभग १००००) रु० है। शुल्क कम होने के कारण इस का अधिकांश दान रूप में जनता से इकट्ठा किया जाता है। आर्य जनता से प्रार्थना है कि वह इस नई फूलती हुई संस्था की ओर विशेष ध्यान दें।

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल रायकोट

(५)

शाखा-गुरुकुल सूपा

गुजरात निवासियों की चिरकाल से प्रबल इच्छा थी कि विश्वविख्यात "गुरुकुल काँगड़ी" की एक शाखा गुजरात प्रान्त में भी खोली जावे। वे सोचते थे कि महर्षि दयानन्द की जन्म-भूमि होने का जिस देश (काठियावाड़ गुजरात) को अभिमान है उसमें उन की स्मारक स्वरूप, कोई भी संस्था नहीं है। अपरञ्च,गुजरात से गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचारीगण पर्याप्त संख्या में जाते थे और यहाँ के निवासी धन द्वारा भी प्रतिवर्ष गुरुकुल काँगड़ी की विशेष सहायता करते थे। धीरे २ यह चिन्ता यहाँ के निवासियों में विशेष रूप से जागने लगा।

इसी बीच में गुरुकुल काँगडी के सुयोग्य स्नातक श्रीयुत पं. ईश्वरदत्त जी विद्यालंकार (वैदिक मिशनरी) जो विदेश से लौट कर आये थे गुजरात में गुरुकुल काँगड़ो की शाखा खोलने का विचार करने लगे। बस, गुजराती आर्य भाइयों का उत्साह दूना होगया। फल स्वरूप गुजरात गुरुकुल सभा का संगठन किया गया, और यह नियम बनाया गया कि जो महानुभाव १०००) एक हजार रुपया दान दें वह इसके सभासद् समझे जावें।

श्रीयुत पंडित ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार (वैदिक मिशनरी), श्रीदयालजी लल्लूभाई और श्रीयुत झीणाभाई देवाभाई के अनथक परिश्रम और उत्साह से पचास सभासद् बन गये, और पच्चीस हज़ार रुपये गुरुकुल की स्थापना के लिये नक़द प्राप्त होगये। तब १९२३ ईस्वी को गुजरात गुरुकुल सभा की स्थापना हुई।

स्थापना—अब गुरुकुल की स्थापना किस जगह की जाय। बहुत विचारने के पश्चात् यह निणय किया गया कि जगत्प्रसिद्ध "बारडोली" तहसील में पूर्णा नदी के रम्य किनारे पर गुरुकुल की स्थापना की जाय। तदनुसार पूर्णानदी के रम्य तट पर गुरुकुलों के प्रवर्त्तक परम पूज्य श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सन्यासी के मङ्गलमय पवित्र कर-कमलों से माघ शुक्ला त्रयोदशी १९८० सम्वत् तदनुसार १८ फरवरी १९२४ ई० को महर्षि-दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी के स्मारक में गुरुकुल कांगड़ी के शाखा रूप इस गुरुकुल की स्थापना हुई। "सूपा" ग्राम के निकट होने के कारण इस गुरुकुल का नाम "गुरुकुल सूपा"- रखा गया। प्रारम्भ में २८ ब्रह्मचारी प्रविष्ट किए गए। प्रवेशार्थ प्रार्थनापत्र तो १०० के लगभग आए थे, परन्तु निवास स्थान की कमी के कारण थोड़े ही ब्रह्मचारी प्रविष्ट किए गए। यह बात भी गुजरात निवासियों

का गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के साथ प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित करती है।

गुरुकुल सूपा का चतुर्थ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। चार श्रेणियों में मिला कर लगभग ६० ब्रह्मचारी हैं। सभा का नये वर्ष का चुनाव हो चुका है। और गुरुकुल का सारा प्रबन्ध एक योग्य और उत्साही आर्य श्रीयुत चतुरभाई बाबर भाई पटेल बी० कोम को सौंपा है। शिक्षण विभाग में भी अच्छे २ कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति हो चुकी है।

प्रारम्भ से ही कई आर्य सज्जन, मन, मन और धन से इस गुरुकुल की सेवा करते आये हैं, जिनमें विजलपुर निवासी श्रीयुत भाणाभाई देवाभाई और माणेकपुर निवासी श्रीयुत डाह्या-भाई नरसिंह के नाम विशेष उल्लेख-नीय हैं। बाजीपुरा निवासी आर्य्य दानवीर श्रीयुत भक्तभाई दुर्लभभाई जी की यह संस्था हमेशा के लिए ऋणी रहेगी क्योंकि आप के हार्दिक प्रेम से गुरुकुल सूपा को २२५ बीघा भूमि दान मिली थी। भक्तिभाई-वैदिक शिक्षण-ट्रस्ट के नाम से एक ट्रस्ट भी बन चुका है।

अल्प समयमें ही गुरुकुल ने पर्याप्त उन्नति की है गुजरात-गुरुकुल-सभा के पास अपनी संस्था के लिए निम्न-लिखित भूमि मकान आदि हैं:—

गुरुकुल भूमि २६ बीघा रु० ८०००)
आश्रम के पांच कमरे
और कार्यालय........ रु० २००००)
भोजनालय और
परिवार गृह .... रु० ३५००)
स्नानागार और
दो कूप .... रु० ३०००)

इन के अतिरिक्त अन्य साधनों को जोड़ कर कुल जायदाद लगभग ४००००) की है। इस के सिवाय बैंक में स्थिर कोष के रूप में २००००) जमा है। गुजरात में गुरुकुल-शिक्षा और धर्म-प्रचार की कमी को देख कर इस का भी गु० गु० सभा शीघ्र प्रबन्ध करने का यत्न कर रही है। धर्मानुरागी और गुरुकुल-शिक्षा प्रेमी दानी महा-नुभाव इस ओर अपनी दृष्टि करके संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति में सहायता देकर श्रेय के भागी बनेंगे।

मंत्री गुजरात-गुरुकुल-सभा

(६)

शाखा-गुरुकुल झज्झर

श्री पण्डित विश्वम्भरनाथ जी ने अफ्रीका से लौटने पर, गुरुकुल कांगड़ी की एक शाखा झज्झर खोलने का संकल्प किया। कुछ आर्य भाइयों से मिलकर रुपया एकत्रित कर शाखा खोलने की आज्ञा आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब से ले ली। कार्य प्रारम्भ होते ही अकस्मात् चिन्ताओं के कारण उन्हें सदमा पहुंचा और कार्य बन्द हो गया फिर स्वामी परमानन्द जी ने

गुरुकुल रायकोट के ब्रह्मचारी तथा अध्यापकगण

पं० ब्रह्मानन्द जी से मिलकर इस गुरुकुल को १६८१ वि० से प्रारम्भ किया। इसके पास १३५ बीघे भूमि है, और बीच में एक पक्का कूप है। १५००) के पोस्ट आफिस में कैश सार्टिफ़िकेट हैं, और लगभग ८०००) पञ्जाब नेशनल बैङ्क में गुरुकुल कांगड़ी की मार्फत जमा हैं। इस समय इस शाखा में २५ ब्रह्मचारी और दो श्रेणियां हैं।

---

(७)

कन्या-गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के समय उसकी स्वामिनी सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने जो गुरुकुल के नियम बनाए थे, उस में गुरुकुल की परिभाषा करते हुए लिखा हुआ है कि गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालय का नाम है जिसमें वे बालक वा बालिकायें, जिनका यथोचित वेदारम्भ संस्कार हो चुका हो, शिक्षा और विद्या प्राप्त करें। और, इसके नोट में उल्लिखित है कि कन्याओं के लिए जब सम्भव होगा पृथक् गुरुकुल स्थापित किया जावेगा। महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) प्रारम्भ से ही समय २ पर व्याख्यानों और लेखों द्वारा आन्दोलन करते रहे और आर्यजनता से जोरदार शब्दों में अपील करते रहे कि वह शीघ्र कन्या गुरुकुल की स्थापना में भी सहायक हों, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। प्रभु की प्रेरणा से दानवीर स्वर्गीय सेठ रग्घूमल जी इस पवित्र कार्य के लिए सहायक के तौर पर आगे बढ़े। उन्होंने कन्या गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया पहले और फिर प्रतिमास ५००) देने का संकल्प किया।

इसी महती सहायता के आधार पर आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने २३ कार्तिक १६८० वि० [८ नवम्बर १६२ . ईस्वी] को दीपावली के शुभ दिन देहली में कन्या-गुरुकुल की स्थापना की। प्रारम्भिक वर्ष में ही ८५ कन्यायें प्रविष्ट हुईं और इस समय १२५ ब्रह्मचारिणियें हैं जो सात श्रेणियों में विभक्त हैं। इस का सब प्रबन्ध गुरुकुल कांगड़ी की तरह आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के ही आधीन है। इस के प्रबन्धोध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता और शिक्षाध्यक्ष आचार्य हैं। इस समय इसकी आचार्या श्रीमती विद्यावती जी सेठ बी. ए. हैं। कन्या-गुरुकुल के अन्दर काम करने वाली अध्यापिकायें आदि सब स्त्रियें ही हैं, और बाहिर के प्रबन्ध के लिए पुरुष हैं।

यह कन्या-गुरुकुल पहला है और एक ही है। इस की अभी तक किसी स्थान पर न स्थिर इमारतें बनी हैं, और न कोई अपना स्थान है। अभीतक किराये के मकानों पर ही गुजारा हो रहा है, यह बड़े दुःख की बात है। आर्य-जाति को इसकी ओर ध्यान देना चाहिए, और शीघ्र इसको स्थिर रूप में लाना चाहिए।

गुरुकुल में प्रविष्ट होते हुवे पुत्र को

पिता का उपदेश

(१)

आज से तू सूत्रधारी ब्रह्मचारी बन गया,
पालना तीखे व्रतों का पुत्र ! मन में ठन गया;
पुत्र ! विद्यापीठ तुझ को आज अनमिल मिल गया,
द्वार सच्चे ज्ञान और आचार का अब खुल गया ॥

(२)

आज से पच्चीसवें तक व्रत यही धारण करो,
वीर्य्य-रक्षा और विद्या का पठन पाठन करो;
आज से आचार्य्य के आधीन करता हूं तुम्हें,
एक दो ही बार मेरा मेल होगा वर्ष में ॥

(३)

जानते थे तुम मुझे ही जन्म-दाता आज तक,
सत्य, मैंने ही किया था देह-पोषण आज तक;
पर, तुम्हारा दूसरा यह आज विद्या-जन्म है,
पुत्र ! यह उस जन्म का दाता पिता आचार्य है ॥

(४)

पुत्र ! जब तक देह के पोषण भरण का भार था,
बस तभी तक ही पिता का पुत्र पै अधिकार था;
सौंपता हूं आज सादर मैं तुम्हें आचार्य को,
पास जिस के पावनी शिक्षा-सुधा को पा सको ॥

(५)

घर इसी आचार्य्य-कुल को पुत्र ! अपना मानलो,
आज से आचार्य्य-कुल को अपना पिता-सम जान लो,

भारती देवी तुम्हारी आज माता हो गई,
बन्धुता यह पुत्र ! सारी अब नयी ही हो गई ॥

(६)

ब्रह्मचारी जो तुम्हें बैठे यहां हैं दीखते,
ये इसी कुल में गुरु से वेद-विद्या सीखते;
आज से सब धर्मभाई ये तुम्हारे बन गये,
पुत्र ! आगे से सुनो, अब तुम इन्हीं के हो गये ॥

(७)

बैठना उठना इन्हीं के साथ होगा सर्वदा,
भोजनाच्छादन मिलेगा साथ ही इन के सदा;
दुःख सुख में अब इन्हीं के दुःखसुख निज मानना,
स्नेह से इन बन्धुवों के साथ रहना, देखना ॥

(८)

पुत्र ! शोकातुर न होना याद कर घर के भले,
ये नये बन्धू तुझे अपने लगावेंगे गले;
शीक्षा शिक्षा के लिये रहना ज़रूरी है यहां,
उन्नती पूरी तुम्हारी हो नहीं सक्ती यहां ॥

(९)

वायु जल था हानिकारी पुत्र ! रहते थे जहां,
पुष्प-सौरभ से भरी पावन पवन चलती यहां;
पर्वतों की रम्य हरियाली मनोहर थी कहां ?
क्या विनिर्मल जान्हवी की शीत धारा थी वहां ?

(१०)

द्वेष की सत्ता नहीं, पर, प्रेम का संचार है,
दुर्गुणों के स्थान में निर्व्याज सत्याचार है;
दिव्यशोभा का यहां चारों दिशा विस्तार है,
पुत्र ! पहिले से निराला ही यहां संसार है ॥

(११)

शील का आगार, विद्या का यहां आवास है,
ज्ञान की चर्चा निरन्तर, शास्त्र का अभ्यास है;
द्वार रत्नों की निरामय खान का मानो मिला,
रत्नसंग्रह कर सको जितना, करो उतना खुला ॥

(१२)

पुत्र ! कैसे हों नियम इस दिव्य विद्यावास के,
बर्तना वैसे, न कोई दोष जिस से दे सके,
मानना आदेश होगा सर्वदा आचार्य का,
कौन शासन, आप आज्ञा पालने बिन कर सका ? ॥

(१३)

वेश सादा, और सात्विक यान पानाहार है,
सादगी ही ज्ञानियों को शोभता शृङ्गार है;
कष्ट को झेलो, यही सच्चे बलों का धाम है,
पुत्र ! तप बिना मिलता कहां आराम है ॥

(१४)

लाड़ के ही साथ पाला था तुम्हें हमने वहां
दोष करने पर परन्तु दण्ड भी होगा यहां;
आदि में शासन गुरू का, यद्यपि लगता बुरा,
पर वही परिणाम में देखा गया अमृत भरा ॥

(१५)

लोभ मोह क्रोध आदि दुर्गणों को छोड़ दो,
शील की रक्षा करो, अज्ञान मुद्रा तोड़ दो;
सत्य का आधार लो, मिथ्या कभी करना नहीं,
पाप से इस भूमि को दूषित कभी करना नहीं ॥

(१६)

खेलने को जो समय मिलता यहां थोड़ा नहीं,
चित्त-रञ्जन के लिये सामान का तोड़ा नहीं;
पुत्र ! केवल खेल का पर अब जमाना होगया,
खेल के अब साथ विद्या का समय भी आगया ॥

(१७)

ब्रह्मचर्याचार ही सब शक्ति का आधार है,
नींव है यह आश्रमों की, मृत्यु का संहार है;
ऐहिकामुष्मिक सुखों का पुत्र ! सच्चा द्वार है,
शास्त्र में विख्यात इस की कीर्त्ति अपरम्पार है ॥

(१८)

अन्त में मेरा यही सच्चा तुम्हें उपदेश है,
पालना व्रत को यथाशक्ती, यही आदेश है;
पुत्र ! आए हाथ अवसर को वृथा खोना नहीं,
बन्धुओं की आस सारी को वृथा करना नही ॥

(१९)

देवगण जो यज्ञ शाला में उपस्थित हैं यहां,
सामने उन के प्रतिज्ञा आज जो की है महां,
पालने में ध्यान देना पुत्र ! उस के सर्वदा,
दीनबन्धू स्नेहसिन्धू साथ देंगे वे सदा ॥

(श्रीकण्ठ)

महात्मा गुरुकुल और मिस्टर कालेज की बातचीत

(लेखक— श्रीयुत श्रीपादराव सातवलेकर जी)

एक समय महात्मा गुरुकुल जी महाराज अन्य भूमण्डलों पर अपना कार्य समाप्त करके हमारी भूमि पर पुनः सञ्चार करने के लिए यहाँ पधारे। जब प्राचीन आर्षकाल में म० गुरुकुल जी अपने विद्या फैलाने का पवित्र कार्य किया करते थे, उस समय आश्रम निवासी ब्रह्मचारियों के वेदघोष से कानन गूंजा करते थे। परन्तु अब वह समय नहीं रहा। इस समय गुरुकुलों का स्थान कालिजों ने ले लिया है, जिन्होंने वनों की खुली पवित्र वायु को छोड़कर नगरों की गन्दी वायु में निवास करने को अधिक पसन्द किया है। यह देख कर म० गुरुकुल जी अत्यन्त दुःखित हुए। वनों से आगे बढ़कर जब उनकी दृष्टि नगरों के लोगों पर पड़ी तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि क्या ये लोग उन्हीं आर्यों की सन्तान हैं, जो इतने हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ होते थे। इन लोगों के नये रंग ढंग, विचित्र बोली और विचित्र पोशाक को देखकर उन्हें और भी चकित होना पड़ा। पूछताछ करने पर म० गुरुकुल जी को पता लगा कि यह सब नयी रोशनी का प्रभाव है, जिसके ठेकेदार मि० कालिज का आजकल इस देश में बड़ा प्रभुत्व है। मि० कालिज का निवास स्थान पूछते हुए म० गुरुकुल अंधेराबाद पहुंचे। वहाँ पहुंच कर म० गुरुकुल, मि० कालिज से मिले और उनके मध्य में जो बातचीत हुई, उसे हम यहाँ प्रकाशित करते हैं:-

महात्मा गुरुकुल— नमस्ते, महाशय!

मिस्टर कालिज— गुड मार्निङ्ग! तुम कौन हो? तुम जंगली लोगों का यहाँ क्या काम है?

म० गुरुकुल— आप नगरवासी लोगों की सेवा के लिए हम उपस्थित हुए हैं।

मि० कालिज— तुम लोगों का यहाँ कुछ काम नहीं है। हमारी सिटी लाइफ़ में तुम क्या कर सकते हो? यह हमारी युनिवर्सिटी है, यह लायब्रेरी, यह टौन हाल, इत्यादि कई इन्स्टिट्यूशन्स हमने खोल रखे हैं, यहाँ जंगली लोगों का क्या काम है?

म० गुरुकुल— ठीक है महाशय ; यह तो सब कुछ अच्छा है, पर यह तो बताइए कि आपने जो जो कार्य यहाँ किये हैं, उनसे लोगों की आयु और आरोग्यता बढ़ी है या घटी है ?

मि० कालिज — आयु के साथ हमारा क्या कनेक्शन है ? तुम ऐसे प्रश्न पूछकर हमारा टाइम क्यों खराब करते हो ? गुड फार नथिंग फैलो !

म० गुरुकुल — यदि आयु और आरोग्यता के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं तो तुम्हारा किसके साथ सम्बन्ध है ?

मि० कालिज — हमारा सिविलाइज़ेशन के साथ सम्बन्ध है ; लोगों को हम सिटिज़न बनाना चाहते हैं।

म० गुरुकुल— महाशय जी ! क्षमा कीजिए, शताब्दियों तक पूर्वकाल में मैं यहाँ कार्य करता रहा था और उस समय हमने भी लोगों को नागरिक बनाया था। परन्तु उस समय लोगों की आयु, आरोग्यता, तेजस्विता आदि बातों में ऐसी अवनति न थी। लोग प्रायः पूर्णायुषी होते थे। अनेक शास्त्रों में प्रावीण्य संपादन करते हुए भी आरोग्य-सम्पन्न रहते थे। परन्तु इस तुम्हारी नयी प्रणाली से इन आवश्यक बातों में अवनति दीखती है।

मि० कालिज— नान्सेन्स, ऐसी बातें करने के लिए मेरे पास टाइम नहीं है, अब मुझे क्लब में जाना है।

म० गुरुकुल— महाशय जी ! आपका भी तो चेहरा सिकुड़ गया है ! आप थोड़ा सा हमारे साथ भ्रमण करेंगे तो अच्छा होगा। कृपा करके आइए, मेरे साथ इस पहाड़ पर चलिए, वहाँ इसी विषय में बातें करेंगे।

मि० कालिज— मेरी हैल्थ बहुत वर्षों से बिगड़ी हुई है, देर से डिस्पेप्सिया सता रहा है, परन्तु क्या किया जावे अपनी ड्यूटी तो करनी ही पड़ती है। अब समय होचुका है, आज डा० 'किक डैथ' साहिब का फ़िज़िकल कल्चर पर हमारे 'बिग व्हेल क्लब' में लेकचर होगा, वहाँ मुझे प्रिज़ाइड करना है, इसलिए अब मैं तुम्हारे साथ घूमने नहीं जा सकता।

म० गुरुकुल— आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना नहीं जानते तो औरों को वहाँ जाकर आप क्या उपदेश देंगे ?

मि० कालेज— तुम मेरा इन्सल्ट करते हो, तुम ज्यादा बकवाद करोगे तो इस पुलिस के हवाले तुम को कर दूँगा।

इतनी बातचीत होने पर 'बिग व्हेल क्लब' का चपरासी मोहम्मद खाँ आ पहुंचा और उसने मि० कालिज को सूचना दी कि आज डाक्टर साहिब का लेक्चर नहीं हो सकता, क्योंकि सर्द हवा के कारण उनको ज़ुकाम होगया है।

म० गुरुकुल— महाशय जी! देखिए, आपकी प्रणाली से स्वास्थ्य की यह दुर्दशा हुई है।

मि० कालिज— तो क्या तुम्हारे सिस्टम से ठीक हो सकती है?

म० गुरुकुल— अवश्य ठीक होगी। आपने जो बिगाड़ किया है, उस के सुधार का हम पूरा प्रयत्न करेंगे। परन्तु कृपया यह तो बताइए कि आप अपनी भाषा में 'इन्सल्ट' 'सिस्टम' आदि शब्दों को मिलाकर उसे खिचड़ी भाषा क्यों बनाते हैं? क्या आपकी भाषा में इनके लिए शब्द नहीं हैं?

मि० कालिज— [कुछ लज्जित होकर] क्या करें भाई! आज कल का यही फैशन समझा जाता है। अच्छा आगे से शुद्ध भाषा बोलने का प्रयत्न करूँगा।

म० गुरुकुल— अच्छा, तो हमारे साथ पहाड़ पर घूमने चलिएगा?

मि० कालिज— चलो, आज तुम्हारे साथ ही घूमने के लिए जावेंगे। परन्तु कमज़ोरी के कारण मैं बहुत दूर तक नहीं जा सकूंगा।

म० गुरुकुल— सुनिए, महाशय जी! शहर की हवा बहुत बिगड़ी हुई होती है, परन्तु वन की हवा शुद्ध और पवित्र होती है। इसलिए मेरा कथन यह है कि सब विद्यार्थियों को न्यून से न्यून २५ वर्ष की आयु तक नगरों से दूर, वन की खुली वायु में रख कर विद्याध्ययन करवाना चाहिए।

मि० कालिज— रहना तो सब लोगों ने शहरों में ही है, फिर विद्यार्थियों को पहले से ही शहरों में क्यों न रखा जावे! इसमें हानि क्या है?

म० गुरुकुल— इसमें बड़ी भारी हानि है। देखिए, २५ वर्ष तक शरीर की वृद्धि का समय है, यदि उस समय गन्दी वायु और बुरे प्रभावों के कारण उसकी वृद्धि में रुकावट पड़ेगी तो जन्मभर के लिये स्वास्थ्य बिगड़ जावेगा।
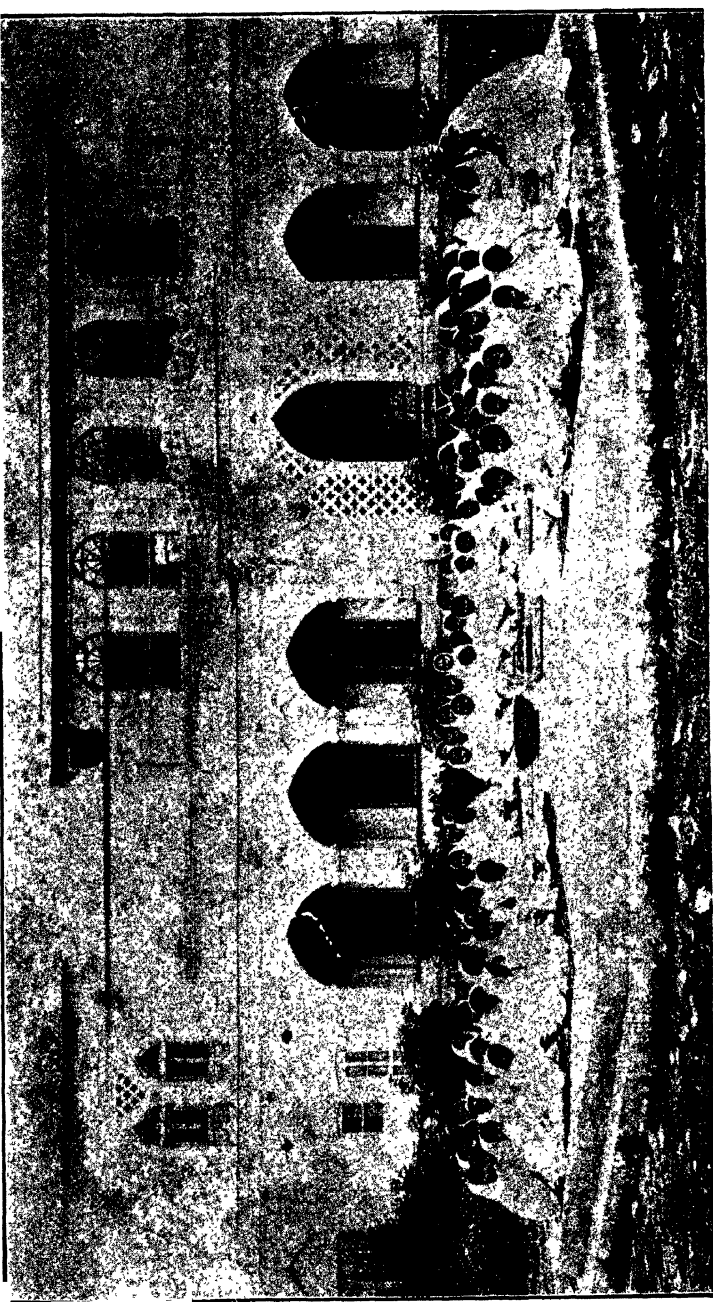
कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ब्रह्मचारिणियें ।

परन्तु यदि पूरी शारीरिक उन्नति के पीछे विद्यार्थी शहर में रहेंगे तो कोई बड़ी हानि न होगी।

मि० कालिज— इस प्रकार तो माता पिताओं से लड़के दूर हो जावेंगे?

म० गुरुकुल— अवश्य होंगे, और अवश्य होने चाहियें। आठ वर्ष की आयु तक लड़के माता पिता के पास रहें, तत्पश्चात् वे राष्ट्र के अतिथि बनाए जावेंगे। पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थियों की रक्षा करना, उनके माता पिता का काम नहीं प्रत्युत राष्ट्र का कर्तव्य है।

मि० कालिज— आप क्या बोल रहे हैं, हमारे ध्यान में नहीं आता। विद्यार्थी लोग राष्ट्र के अतिथि कैसे हो सकते हैं?

म० गुरुकुल— महाशय जी! ध्यान दीजिए। हमने तो आयुष्य के चार भाग किए हैं। मनुष्य की आयु १०० वर्षों से १२० तक······

मि० कालिज— महात्मा जी! आप कब की बात करते हैं? इस समय तो ४० वर्ष तक ज़िन्दा रहना भी कठिन होता है।

म० गुरुकुल— यह मैं जानता हूं। हमारी प्राचीन व्यवस्था टूट जाने से ही तो आयु, शक्ति और तेजस्विता घटने लगी है। यदि हमारी प्रणाली पुनः चलेगी तो बराबर मनुष्य पूर्ण आयु वाले होंगे। अस्तु 'शतायुर्वै पुरुषः' यह साधारण मान है। चार विभाग करके पहले विभाग में ब्रह्मचर्य, दूसरे विभाग में गृहस्थ, तीसरे में वानप्रस्थ और चौथे में सन्यास—ये चार आश्रम निश्चित किए गये हैं। गृहस्थाश्रमी लोग ही नागरिक होते हैं। ब्रह्मचारी लोग वन में रह कर विद्याध्ययन करते हैं। वानप्रस्थी लोग वन में रह कर ब्रह्मचारियों को पढ़ाते हैं। इन दोनों आश्रमवासियों की पालना राष्ट्र का काम है। ये लोग राष्ट्र के अतिथि हैं। अब रहा सन्यासाश्रम, सन्यासी लोग सब राष्ट्रों के साथ एकसा संबन्ध रखते हैं। निष्पक्षपात होकर सब के हितार्थ उपदेश करना इनका काम है।

मि० कालिज— महाराज आप तो ख़याली दुनियाँ में सञ्चार कर रहे हैं। क्या कभी ऐसी व्यवस्था हो सकती है?

म० गुरुकुल— प्राचीन काल में आर्यावर्त में ऐसी ही व्यवस्था थी, और आप सब लोग ध्यान देंगे तो आगे भी हो सकती है। बचपन से बुढ़ापे तक शहरों में रहने से शरीर मन बुद्धि, तीनों का विकाश नहीं होता। इसके लिए आप अपना ही उदाहरण देखिए, आपका स्वास्थ्य ख़राब होने का यही कारण है।

मि० कालेज— जो आप कहते हैं, वह सब प्रतीत तो ठीक ही होता है। आज एक दिन शुद्ध वायु का सेवन करने से मुझे उत्साह विदित हो रहा है।

म० गुरुकुल— ऐसी शुद्ध वायु यदि विद्यार्थियों को सर्वदा मिले तो अवश्य उनका स्वास्थ्य ठीक ही रहेगा। आरोग्य ठीक रहने से विद्या भी बहुत प्राप्त हो सकती है।

मि० कालेज— गुरुजी! जो आप कहते हैं, वह सब ठीक है, मैं आज से आपका सहायक बनता हूं।

म० गुरुकुल— जो हमारा उद्देश्य है, वह आपका भी है। विद्या के प्रचार करने में हम दोनों सहमत हैं, यदि आप अपनी सब शक्ति इस ओर लगावें तो देखिए थोड़े ही काल में आरोग्यता, विद्वत्ता, तेजस्विता और सदाचार आदि गुणों का साम्राज्य सर्वत्र हो जावेगा।

मि० कालेज— मैं आज से आपका अनुगामी बनता हूं और मैं अपना तन मन धन, सब कुछ गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के प्रसार में लगा दूंगा।

इतनी बात चीत होने पर दोनों आनन्द से "सहनावतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै" यह मंत्र गाने लगे। आशा है सब पाठकगण ऐसा ही निश्चय करके अपनी सन्तति को गुरुकुल में भेजेंगे।

मेरा स्वर्ग

(१)

चलो यहां से चलें वहां हम जहां क्लेश का हो न उड़ान।
पूरण सुख ही फैल रहा हो, रहता मधुर जहां मुस्क्यान॥

(२)

झूम रहीं हों जहां लतायें खिलीं बसन्तीं कलियाँ जान।
भौंरों की मीठी रागिनियां उठें प्रेम का करती गान॥
करती हो निज नवल चमेली फूलों भरी मधुर आह्वान।
हो वसन्त ऋतु छाई जिस में आठों पहर महीनों जान॥

किंशुक फूले हुए जहाँ हों, सेमल के हों पेड़ महान।
कोयल जिस के वन में छिप कर बैठी मधुर मधुर ले तान ॥ चलो०

(३)

मलयाचल की पवन चले जहँ शीतल कोमल सौरभवान।
यज्ञ धूम से हुआ सुगन्धित जिसका हो सारा उद्यान ॥
मृग-शावक रोमन्थ कर रहे जहां करें निर्भय विश्राम।
पक्षी वृन्द जहाँ प्रमुदित हो गान करें जगदीश्वर नाम ॥
विस्तृत हों मैदान घास के गौएँ चरती हों बलवान।
टपक रहा हो दूध थनों से बछड़े करते हों तब पान ॥ चलो०

(४)

"मोहन" चलो उसी उपवन में रहने दो पीछे का ध्यान।
जहाँ उठें तूफान अनोखे आंधी दे जीवन का दान ॥
सामगान हो नित्य सबेरे कोकिल-कुल हों देते तान।
छोटे छोटे बालक बैठे करें जहां पर प्रभु का ध्यान ॥
जहाँ मिलें उपदेश धर्म के जीवन का नित हो कल्याण।
विषयवासना छूटें सारी हों शरीर से भी बलवान ॥ चलो०

(५)

पापकर्म का ध्यान जहां पर कभी न आता हो सच जान।
आंखों से मधु बरस रहा हो जहां हृदय का हो उत्थान ॥
कहीं कुटी हो बनी और कहिं बने हुए हों भवन महान।
जँह वशिष्ठ और गौतम जैसे ऋषि रहते हों पूरन काम ॥
जहाँ क्षीर की नदियां बहतीं मीठे पकते हों पकवान।
ले चल वहां यहां से मुझ को जल्दी हे मेरे भगवान ॥ चलो०

(६)

जहां रोग का नाम न हो और जहां न भय का हो कुछ भान।
ओत प्रोत हो जहां सरलता, पावें छोटे भी सन्मान ॥

जहां सङ्ग हो खाना पीना नित्य जहां हो मिल कर गान।
तप हो, व्रत हो, नियमधर्म हो जहाँ सत्य का हो सन्मान॥
जहाँ स्वार्थ का नाम न हो बस सेवा होती हो निष्काम।
पैसा तक भी पास नहीं हो फिर भी हो आनन्द निकाम॥ चलो०

(७)

घण्टे का हो नियत नाद जहँ तो हो जावें पुलकित प्राण।
ऊंच नींच का भेद जहाँ से भाग गया हो लेकर जान॥
हो समानता सब में ऐसी जैसी वन में लक्ष्मण राम।
जहाँ शोक का काम न हो कुछ और न हो धन का शुभ नाम॥
जहाँ वीरपूजा नित होती सच्चे ब्राह्मण का हो मान।
सन्यासी को सीस झुकाते दीखें सारे वृद्ध जवान॥ चलो०

(८)

चोरी, ठगी, विषय-लोलुपता जहाँ न पा सकतीं हों स्थान।
गायत्री का जप करता हो सबका पूरा ही कल्याण॥
कोई ब्रह्म-विचार करें जहँ, कोई नित्य चलावें बान।
कोई कृषक बने हों, सेवा कोई करते हों हर आन॥
गङ्गा की धारा, बस आकर जिसे कराती हो नित स्नान।
जहाँ न दुख का लेश, करें अब हम भी वहीं शीघ्र प्रस्थान॥ चलो०

(९)

मित्रों को भी संग ले चलें, चलें करें सत्वर प्रस्थान।
पुण्य हिमालय ऊपर है जहँ, नीचे है गङ्गा का स्थान॥
रहते जहां जगत के नामी स्वामी "श्रद्धानन्द" महान।
स्वर्गलोक के देव सदा हैं जिनका करते गुणगण गान॥
हे हृदयेश महेश्वर! अब तो दूभर लगता है यह स्थान।
वहां उड़ा कर ले चल, तेरा जो है शान्त मनोहर धाम॥ चलो०

पं० विद्याधर विद्यालंकार 'सोहन'

विद्वानों की दृष्टि में गुरुकुल

ब्रिटिश साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधान सचिव रेम्जे मैग्डानल्ड - भारतीय शिक्षा में गुरुकुल एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण वस्तु है। १८३५ में लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सम्मति लिखी थी। तब से आज तक भारतवर्ष में शिक्षा के लिये जो यत्न किये गये हैं उन में यह विद्यालय सब से अधिक गौरवयुक्त यत्न है। मैकाले की सम्मति के परिणामों से भारतवर्ष में प्रायः सब लोग असन्तुष्ट हैं, किन्तु उस असन्तोष को सिवा गुरुकुल के चलाने वालों के और किसी ने कार्य में परिणत नहीं किया।

* * * *

श्रीयुत लार्ड मेस्टन भूतपूर्व लाट साहिब युक्तप्रान्त--इस आश्चर्यजनक मनोरञ्जक तथा उत्तेजक संस्था को देखने के लिए आना मेरे लिये बड़ा परितोष-दायक सिद्ध हुआ। यहां अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर तपस्वियों का एक समुदाय देखने में आता है जो प्राचीन ऋषियों की प्रणाली को वर्तमान वैज्ञानिक रीति के साथ मिला कर वस्तुतः गुजारे मात्र पर काम कर रहे हैं। यहां के विद्यार्थी पुष्ट शरीर आज्ञाकारी, पर सच्चे राजभक्त, कार्यपरायण तथा प्रसन्न हैं, और इनका पालन पोषण अच्छी तरह किया जाता है। एक बात मैंने यहां और भी देखी है। मुझे शोक है कि जहां दौर्भाग्यवश हमारे स्कूलों और कालिजों में तीन के पीछे एक विद्यार्थी के ऐनक लगी होती है, वहां गुरुकुल में २० में एक के एनक लगी है। यह गुरुकुल मेरे लिए आदर्श शिक्षणालय है।

* * * *

कलकत्ता युनीवर्सिटी कमीशन के प्रधान डा० सेडलर महोदय--आपकी संध्या की प्रार्थना इस प्रकार की सार्वभौम है कि उस में बिना किसी परिवर्तन के सब मत और सम्प्रदायों के अनुयायी हार्दिक एकता और धार्मिक भाव से शामिल हो सकते हैं।

मैं समझता हूँ कि जिस शिक्षा-विधि में मातृभाषा को प्रथम और सब से पूज्य स्थान दिया गया है, वहां संभव है कि चित्त का स्वतंत्र विकास होकर मानसिक वृत्तियों तथा भावों पर प्रभुत्व प्राप्त हो और उच्च आकांक्षाओं को ओजस्वी शब्दों में प्रकट करने की योग्यता प्राप्त हो।

भारत महामंत्री के भूतपूर्व प्राइवेट सैक्रेटरी श्रीयुत किश महोदय—प्रबन्ध के साधनों की पूर्णता, कार्यकर्ताओं को सरलता और ब्रह्मचारियों की प्रत्यक्ष प्रसन्नता से मुझ पर इतना अधिक प्रभाव डला है कि मैं उसको इन थोड़ी सी पक्तियों में वर्णन नहीं कर सकता।

* * * *

सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी के प्रधान श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री महोदय—कोई भी हिन्दु ऐसा नहीं हो सकता जिसको गुरुकुल के साथ प्रेम न हो, क्योंकि यह भिन्न २ शिक्षा विषयक हिन्दु-विचारों तथा उद्देश्यों को अपने साथ रखता है, और इसके साथ ही सनातन काल के गुरु तथा शिष्य के पवित्र सम्बन्ध को पुनर्जागृत करता है। मैं देखता हूँ कि ब्रह्मचारियों की सब आदतें सादी हैं। जो सामान ये उपयोग में लाते हैं, वह भी यदि कठोर नहीं तो सादा अवश्य है। मैं समझता हूँ कि ब्रह्मचारियों की नित्यप्रति की आदतें सर्वथा नियमित हैं, और वे लगभग कठिन तपस्या के समीप २ पहुँचती हैं। इस प्रकार की अवस्थाओं में शिक्षा का सफल और कृतकृत्य होना आवश्यक ही है।

ऋषि के जीवन का एक पृष्ठ

(ले०—श्रीयुत प्रेमचन्द बी० ए०)

यों तो श्री स्वामी श्रद्धानन्द ने देश और समाज के हितों की रक्षा के लिए अपना जीवन ही अर्पित कर दिया था, पर उन में सब से बड़ा गुण जो था वह उन की अपूर्व शालीनता थी। उन्होंने जाति सेवा के लिए जो मार्ग निश्चित किया था उस में अन्य मत वालों से मतभेद होना अनिवार्य था, लेकिन सिद्धान्तों के भेद को उन्होंने कभी अपने सौजन्य पर आधिपत्य न जमाने दिया। यही कारण है कि मुसलिम नेताओं में भी शायद ही कोई ऐसा हो जिस ने मुक्त कंठ से आप की कीर्ति का अनुमोदन न किया हो। हिन्दुओं के क़लम से अब तक आप के गुणानुवाद और शोक में हज़ारों लेख निकल चुके हैं, लेकिन एक सच्चे सहृदय मुसलिम के क़लम से इस विषय में जो लेख निकला है वैसा अब तक किसी हिन्दू ने नहीं लिखा। लेख क्या है एक भक्त की श्रद्धांजलि है, जिसके एक २ शब्द में लेखक के विशुद्ध भाव झलक रहे हैं। यह लेखक दिल्ली निवासी मि० आसफ़ अली, बार-एट-ला हैं। आप का लेख इसी महीने के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में छपा है। उस की

पढ़ने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रवादी मुसलिमों को भी आप से कितना प्रेम था। और उस प्रेम का क्या कारण था? यही कि स्वामी जी की स्वाभाविक मृदुता, सौम्यता और शालीनता कभी उन का साथ नहीं छोड़ती थी। उनका हृदय निष्कपट था, उसमें क्षुद्रता के लिये स्थान ही न था। आप स्वामी जी के सामाजिक और धार्मिक कृत्यों का उल्लेख करने के बाद लिखते हैं—

"सन् १९१८ में जब दिल्ली में पहली बार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो स्वामी जी स्वागत—कारिणी समिति के उपप्रधान चुने गए थे। मैं भी सहकारी मन्त्री था और मुझे स्वामी जी के साथ काम करने का उस समय बहुत अवसर मिला। आपकी स्नेह-मय उदारता, अपूर्व सज्जनता, नम्रता और निष्कपट मैत्री ने शीघ्र ही मुझे वशीभूत कर लिया। उन की गुरु-जन सुलभ सौम्यता और स्नेह और मेरी ओर से भक्ति और सम्मान के भावों ने हमारे बीच में एक ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया जो अनेक विषयों पर हम में तात्विक विरोध होने पर भी अन्त समय तक बना रहा"।

सन १९२२ में मियाँवाली जेल में लेखक महोदय की स्वामी जी से फिर भेंट हुई, जिन की सज़ा के अब थोड़े ही दिन और बाकी रह गए थे। ज्योंही आप को मालूम हुआ कि स्वामी जी यहां हैं—"मैं उन की कोठरी की ओर बेतहाशा दौड़ पड़ा। स्वामी जी ने दोनों बाँहें फैला कर मेरा अभिवादन किया और बड़े स्नेह से मुझे गले लगाकर अपने पास बैठा लिया।"

मियाँवाली जेल में भी स्वामी जी गीता, रामायण या दर्शन पर उपदेश दिया करते थे। क़ैदियों को जिस सत्संग का शुभ अवसर और कहीं न मिल सकता वह इस जेल में हाथ आता। प्रेमियों की एक मण्डली रोज़ जमा हो जाती थी। मौलाना आसफ़ अली ने स्वामी जी से गीता रहस्य माँग कर पढा और जब कभी उन्हें कोई शंका होती स्वामी जी बड़े हर्ष से उसे समाधान कर देते थे। कभी राजनीति पर बात चल पड़ती, कभी दर्शन पर, और कभी फ़ारसी साहित्य पर। स्वामी जी फ़ारसी साहित्य के बड़े अच्छे मर्मज्ञ थे। मौलाना रूम की मसनवी से आप को बहुत प्रेम था।

मौलाना आसफ़अली का स्वास्थ्य उन दिनों कुछ अच्छा न था। शरीर में रक्त की कमी थी। चेहरा पीला पड़ गया था। स्वामी जी को उन की दशा देख कर चिन्ता हुई। वाह! कितना सच्चा वात्सल्य भाव था। खुद जेल में थे, सभी प्रकार के कष्ट सह रहे थे, पर मौलाना आसफ़ अली की यह दशा देख कर आपने उन के लिये एक दूसरी कोठरी चुन दी जिस में धूप और प्रकाश

स्वच्छन्द रूप से मिल सकता था। उन के आहार के संबंध में भी जेलर से सिफ़ारिश कर दी, जो स्वामी जी का बहुत लिहाज़ करता था। यह सद्व्यवहार था, यह सज्जनता थी, जो परिचितों को भी उन का भक्त बना देती थी।

हम आज उस उपदेश को भूले जा रहे हैं जिस का सजीव उदाहरण ऋषि श्रद्धानन्द का जीवन था। हम आज मुसलमानों को 'बरबर' कहते नहीं थकते। एक व्यक्ति की परिवर्तित मानसिक वृत्ति से उत्तेजित हो कर समस्त जाति को "वहशी" और "बरबर" और न जाने क्या क्या कह रहे हैं। पर उसी वहशी और बरबर जाति का एक व्यक्ति ऋषि का अन्त समय तक चिकित्सक था। उसी वहशी और बरबर जाति के व्यक्तियों से ऋषि की मित्रता थी। अबदुल रशीद जैसे दीवाने किस समाज, किस देश और किस जाति में नहीं हैं या नहीं थे? और अगर हमारे समाचार पत्रों का औधत्य इसी भाँति दिन दुना रात चौगुना बढ़ता रहा तो ऐसी दुर्घटनाओं की शंका भी उसी अनुपात से बढ़ती जायगी। विद्वेषात्मक भाषा और भावों का सम्पादन करके आज तक किसी धर्म सम्प्रदाय या जाति ने कीर्ति और यश नहीं पाया है और न कभी पावेगा। किसी धर्म की श्रेष्ठता उस के अनुयाइयों के सदाचार, सेवा और सद्वृत्ति में है, गाली और फक्कड़ बाज़ी में नहीं। ऋषियों को कलंकित करने वाले, निष्ठाहीन, उत्तरदायित्व हीन, विवेकहीन युवकों को जब हम धर्म के नाम पर लट्ठ लिए देखते है तो यही कहना पड़ता है कि भगवन्, इस धर्म की लाज अब तुम्हारे हाथ है, अब तुम्हीं इसकी रक्षा करना। हम मे खुद क्या क्या कमजोरियां हैं जिन के कारण हमारी यह दुर्गति हो रही है पहले उनका सुधार कीजिए। मुस्लिम इतिहास की जाँच परताल और मुसलिम महात्माओं की जीवन चर्या लिखने के लिए जो क्षमता, जो सहनशीलता, जो निर्पेक्षता चाहिए वह बड़े स्वाध्याय, मनन और बड़े सौहादुर्य से प्राप्त होती है।

गुरुकुल द्वारा उत्पन्न साहित्य

साहित्य की उन्नति करना गुरुकुल के उद्देश्यों में से एक है। इस अंग की पूर्ति के लिये भी गुरुकुल की ओर से प्रयत्न हुवा है। अब तक यहां से बहुत सा साहित्य प्रकाशित हो चुका है। पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने की तरफ भी गुरुकुल तथा उसके स्नातकों ने ध्यान दिया है। अब तक जो पुस्तकें

प्रकाशित हुई हैं, या शीघ्र होने वाली हैं, उनको संक्षेप से वर्णन करना उपयोगी होगा।

गुरुकुल से संस्कृत व्याकरण और साहित्य विषयक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत का प्रायःसारा ही कोर्स गुरुकुल से निकल चुका है। प्रारम्भिक श्रेणियों में पढ़ाई जाने वाली संस्कृत प्रवेशिका, संस्कृत पाठावलि, बालनीति कथा माला, संस्कृताङ्कुर, काव्यलतिका आदि पुस्तकों के सिवाय उच्च संस्कृत पुस्तकें भी गुरुकुल से प्रकाशित हुई हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में शृङ्गार रस प्रधान है। इस लिये उसे निःसङ्कोच रूप से विद्यार्थियों के हाथ में नहीं दिया जा सकता था, इस कमी को पूरा करने के लिये गुरुकुल ने विशेष रूप से प्रयत्न किया है। इसी उद्देश्य को सन्मुख रख कर हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, रघुवंश, साहित्यदर्पण आदि पुस्तकों के संसोधित संस्करण गुरुकुल ने छपाये हैं। साथ ही महाविद्यालय विभाग में पढ़ाने के लिये 'साहित्यसुधा संग्रह' तीन भाग (बिन्दु) गुरुकुल प्रकाशित कर चुका है और शेष चौथा भाग भी छपने वाला है। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित व्याकरण की शिक्षा पद्धति को ध्यान में रख कर गुरुकुल ने अष्टाध्यायी का एक बहुत ऊँची कोटि का भाष्य प्रकाशित किया है, और एक सरल अष्टाध्यायी, महाभाष्य लिखवाया जारहा है, जो शीघ्र ही मुद्रणालय में दे दिया जावेगा। इन के सिवाय अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति, महाभारत आदि के भी गुरुकुल ने संस्करण निकाले हैं।

गुरुकुल से इतिहास, विज्ञान आदि के भी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हुवे हैं। वाह्य यूनिवर्सिटियों के एफ. ए. स्टैण्डर्ड तक का उत्तम कोर्स गुरुकुल से निकल चुका है। मा० गोवर्धन जी तथा पं० महामुनि जी विद्यालंकार ने विद्यालय विभाग के लिये भौतिकी तथा रसायन शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे हैं। और यहां के भूत पूर्व उपाध्याय प्रो० महेशचरण सिंह की 'हिन्दी केमिस्ट्री' विद्यालय विभाग के लिये विज्ञान का उत्तम ग्रन्थ है। प्रो० रामशरणदास-सक्सेना ने महाविद्यालय विभाग की दो कक्षाओं के लिये गुणात्मकविश्लेषण पर उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ छप चुका है। यद्यपि इन ग्रन्थों की अभी हिन्दी जगत में बिक्री बहुत कम है फिर भी प्रभूत व्यय कर के वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित करने में गुरुकुल विशेष रूप से उद्योग कर रहा है।

आचार्य रामदेव जी ने भारत के प्राचीन इतिहास पर दो प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। हिन्दी साहित्य में इनकी बहुत कदर हुई है। पहले भाग की सात हजार प्रतियां बिक चुकी हैं और दूसरे भाग के पहले संस्करण में ३ हजार प्रतियां छपाई

गई हैं। आचार्य रामदेव जी ने पुराणों का विशेष रूप से अनुशीलन कर के 'पुराणमत पर्यालोचन' नाम का एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। गुरुकुल के भूतपूर्व उपाध्याय डा० बालकृष्ण जी ने भारतीय इतिहास पर दो पुस्तकें लिखी हैं, जो अनेक शिक्षणालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में रखी गई हैं। उन्हो ने अर्थशास्त्र, शासन व्यवस्था आदि विषयों पर भी अनेक पुस्तकें लिखी है। गुरुकुल के भूतपूर्व उपाध्याय प्रो० साठे ने विकासवाद पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है जो कि गुरुकुल की तरफ से प्रकाशित किया गया है। इसी तरह प्रो० सुधाकर जी ने 'मनोविज्ञान' महत्व पूर्ण ग्रन्थ लिखा है, जिस पर कि उन्हें मङ्गला प्रसाद पारितोषक मिल चुका है।

वैदिक साहित्य के अनुसन्धान के लिये भी गुरुकुल से बहुत उद्योग हुवा है। यहां के उपाध्याय प्रो० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार ने निरुक्त का वेदार्थ दीपक भाष्य दो भागों में प्रकाशित किया है। यह भाष्य बहुत विद्वत्ता पूर्ण और प्रमाणिक है। इसी तरह उपाध्याय विश्वनाथ जी ने 'अथर्ववेद का स्वाध्याय' 'वैदिक जीवन' आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। आर्यसमाज के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ गुरुकुल में बहुत समय तक अध्यापक रह चुके हैं और उनकी अनेक पुस्तकें गुरुकुल से ही प्रकाशित हुई हैं। इसी तरह पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर का गुरुकुल से घनिष्ठ सम्बन्ध है और उनकी बहुत सी पुस्तकें गुरुकुल से ही प्रकाशित हुई हैं।

गुरुकुल के स्नातकों ने हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये बहुत कार्य किया है। प्रत्येक चार स्नातकों में से एक ग्रन्थ लेखक है। बहुत से लेखकों के ग्रन्थ अभी मुद्रित व प्रकाशित न हुवे हैं। यदि अप्रकाशित ग्रन्थों को भी ध्यान में रखा जावे, तो प्रत्येक तीन स्नातकों में से एक ग्रन्थकार है। हम कुछ स्नातकों द्वारा लिखी प्रसिद्ध पुस्तकों की सूचि यहां पर देना पर्याप्त समझते हैं—

पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

१ नैपोलियन बोनापार्ट
२. प्रिंस बिस्मार्क
३ महावीर गैरीवाल्डी
४. स्वर्ण देश का उद्धार (नाटक)
५ आर्यसमाज का इतिहास

प्रो. डा० प्राणनाथ जी विद्यालंकार

१. राजनीति शास्त्र
२. राष्ट्रीय आय व्यय शास्त्र
३. शासन पद्धति
४. इङ्गलैण्ड का इतिहास (दो भाग)
५. भारतीय अर्थशास्त्र
६. कौटिल्य अर्थशास्त्र

प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार

१. वैदिक जीवन
२. अथर्ववेद का स्वाध्याय
३ यज्ञों में पशुहिंसा

प्रो० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार

१. वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य (दो भाग)
२. वेदार्थ करने की विधि
३. महर्षि पतञ्जलि और तत्कालीन भारत
४. वैदिक स्वराज्य
५. जिनचरित

पं० नन्दकिशोर जी विद्यालङ्कार

१. पुनर्जन्म
२. वैदिक विवाह का आदर्श

प्रो० जयचन्द्र विद्यालङ्कार

१. जातीय शिक्षा
२. भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार
३ मण्डलीक काव्य

पं० जयदेव विद्यालङ्कार

१. चिकित्साकालिका (अनुदित)
२. भैषज्यरत्नावली (टीका)
३. चक्रदत्त

पं० आत्मदेव विद्यालङ्कार

१. स्वस्थवृत्त

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

१. पुराणमत पर्यालोचन
२. धनुर्वेद

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

I How to Learn Hindi
2. Confidential Talks to Young-men -ब्रह्मचर्य'।

प्रो० धर्मदत्त विद्यालंकार

१. प्राचीन भारत में स्वराज्य
२. सन्ध्या संगीत
३. गीता

पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार

१. तुलनात्मक धर्म विचार
२. वैदिक कर्तव्य शास्त्र
३. वैदिक समाज शास्त्र

पं० सत्यदेव विद्यालङ्कार

दयानन्द दर्शन

पं० भीमसेन विद्यालङ्कार

वीरमराठे

पं० सोमदत्त विद्यालङ्कार

रूस का पुनर्जन्म

प्रो० वागीश्वर विद्यालङ्कार

साहित्य सुधा संग्रह (चार भाग)

पं० विद्याधर विद्यालङ्कार

पवित्र पापी

पं० अत्रिदेव विद्यालङ्कार

न्याटावैद्यक

पं० महामुनि विद्यालङ्कार

दयानन्द जीवन का मनन

पं० वंशीधर जी विद्यालंकार

'मेरे फूल'

इनके सिवाय भी बहुत से स्नातकों द्वारा लिखे हुवे ग्रन्थ हैं, जो प्रकाशित से चुके हैं। बहुत से ग्रन्थ मुद्रित हो रहे हैं, बहुत से अभी लिखे ही पड़े हैं। इस विवरण से स्नातकों द्वारा किये हुवे साहित्यिक कार्य का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

स्नातकों ने बहुत से पत्रों का सम्पादन भी किया है। दैनिक विजय, दैनिक अर्जुन, प्रणवीर, सत्यवादी, मारवाड़ी, राजस्थान केसरी, प्रभात, आर्य, आर्यकुमार, आदित्य, सद्धर्म प्रचारक, दयानन्द प्रकाश, आर्यपत्र, आर्यजीवन आदि पत्रों का सम्पादन स्नातकों द्वारा होता रहा है। अन्य भी अनेक पत्रों का सम्पादन स्नातकों द्वारा होता रहा है। अन्य भी अनेक पत्रों के सम्पादकीय विभाग में स्नातक कार्य कर रहे हैं।